

ज्योतिर्वेद - विमर्श

(वैदिक वाङ्मय को ज्योतिष वाङ्मय के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास)

प्रथम भाग

डॉ. पी वी बी सुब्रह्मण्यम्

भारतीयज्योतिषम्



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Creator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Creator of
hinduism
server!

jyotirveda - vimarshah

Copyright © 2012 by Author

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means without written permission from the author.

First Edition: Dec 2012

ISBN **978-81-923846-3-4**

Printed and published by

bharatiya jyotisham

L 108, Laharpur, Bhopal-43

(www.bharatiyajyotisham.com)

Printed in India at

Shivam Graphics, Bhopal (M.P)

☎ 91 755 4224126

समर्पित

उस अज्ञात जिज्ञासु को जो तेलुगु में ज्योतिर्वेद नामक पुस्तक मुझे सन् 2006 में भेंट की जो मेरे विचार धारा को पूर्ण रूप से बदल दिया।

विषयसूची

परिचय	5
पृथ्वी	09
वेदविमर्श	14
तारासमूह और देवता	29
वैदिक राशियाँ	48
उपसंहार	85

परिचय

1960 के दशक में आन्ध्रप्रदेश के एक चिन्तक वैदिक वाङ्मय के एक नये रूप पर प्रकाश डालने का प्रयास किया। यह प्रयास इस बात को सिद्ध करने वाला था कि वैदिक वाङ्मय के अनन्तार्थ हो सकते हैं। सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय विश्व का ही वर्णन करता है जो ज्योतिष के ही अन्तर्गत विषय माना जाता है।

सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय सत्य तथा नित्य अन्तरिक्ष का ही वर्णन करता है इसीलिये वह अपौरुषेय तथा नित्य है। भारत में अनादि से प्रचलित होने वाले पर्व त्योहार आदि प्रकृति तथा अन्तरिक्ष में ही समाविष्ट हैं। इसी कारण से भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता नित्य और सत्य है। इस सभ्यता के अनादि काल से टिके रहने का यही कारण है तथा इसी कारणवश यह अनन्त काल तक रहेगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ उस महान चिन्तक के विचारों का गवेषणात्मक दृष्टि से प्रस्तुत किये जाने वाला विमर्श स्वरूप है। लेखक के कुछ महत्वपूर्ण अंशों का शोध की दृष्टि से विश्लेषण करने का ही यह प्रयास है।

ज्योतिर्वेद नाम से प्रसिद्ध मूल ग्रन्थ में अनेक विषय हैं। इन सभी विषयों का एकत्र विश्लेषण करना कठिनतर कार्य है तथा ग्रन्थ का जितना विस्तार होता है उतना ही पाठक में नीरसता उत्पन्न होने की सम्भावना बढ़ जाती है। तथा च ग्रन्थ विमर्श का मुख्योद्देश्य नये आयाम में शोधार्थियों को ले जाने का है। अतः प्रस्तुत भाग में मुख्य रूप से चार बिन्दुओं का ही ग्रहण

किया गया है। इन चारों बिन्दों में भी अनेकशः उपबिन्दु हैं जो स्वतन्त्र रूप से शोध करने की सत्ता को रखते हैं।

स्थान स्थान पर आचार्य तथा ग्रन्थकर्ता शब्दों का प्रयोग किया गया है। इनका आशय मूलग्रन्थकर्ता से है। वैदिक साहित्य की निगूढता के कारण विषय के पठन मात्र से सहेतुकता तथा अहेतुकता का निर्धारण करना शोभनीय नहीं लगता है।

सत्य तो सत्य होता है। सत्य सिद्ध होने के लिये किसी उपकरण की अपेक्षा नहीं रखता है। किन्तु सामान्य जन तथ्य तथा आकड़ों के आधार पर ही सत्य को स्वीकारने के लिये सन्नद्ध होते हैं।

सत्य को सिद्ध करने से अनेक लाभ हो सकते हैं। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है न्यूटन महोदय का गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त।

किसी भी वस्तु को ऊपर फेंकने के बाद वह फिर जमीन पर गिरती है। इस बात को लाखों वर्षों से सभी जानते थे। किन्तु कुछ गणितीय समीकरणों से समझाने का प्रयास न्यूटन महोदय के द्वारा किया गया। इस प्रयास के बाद लोग गुरुत्वाकर्षण को और अच्छे से समझने लगे। तब तक इस सत्य को अपने शोध व खोज में प्रयोग नहीं करने वाले लोग न्यूटन महोदय के विश्लेषण के बाद शोध में इसका प्रयोग करने लगे। फलतः विज्ञान एक शताब्द काल में ही अनेक चमत्कारों के साथ हमारी पहुँच से बहुत दूर चला गया। आज वैदिक साहित्य को विज्ञान मानने वाले आधुनिक विज्ञान से प्रभावित लोगों को मनाने में सफल नहीं हो पा रहे हैं। एक न्यूटन के फार्मुले का प्रयोग हरेक वस्तु, हरेक यन्त्र व हरेक खोज में

किया जाता है। अर्थात् आज के विज्ञान का स्वरूप न्यूटन महोदय का ही देन है।

यहाँ पर ध्यान देने का एक विषय है। जब जब चर्चा न्यूटन महोदय की होती है तब तब उनके पूर्ववर्ती आचार्य भास्कर की चर्चा होने लग जाता है। कारण है न्यूटन से पहले गुरुत्वाकर्षण का वर्णन व प्रतिपादन करने वाले आचार्य भास्कर हैं। किन्तु जिन माध्यमों के व उपकरणों के आधार पर गुरुत्वाकर्षण को न्यूटन महोदय प्रदर्शित करने का प्रयास किये तथा जिस प्रकार न्यूटन के अनुयायी उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को आगे बढ़ाये उस प्रकार की स्थिति भास्कराचार्य के विषय में उत्पन्न नहीं हो सकी। यद्यपि यह दुर्भाग्यपूर्ण है तथापि सत्य है। सत्य का ग्रहण तथा सत्य को स्वीकारना शोधकर्ता के लिये अत्यन्त आवश्यक होता है।

“ज्योतिर्वेद” में भी अनेक विषयों का प्रतिपादन करने का प्रयास आचार्य के द्वारा किया गया है जो परम्परागत जीवन में हमारे द्वारा सत्य माने गये हैं। किन्तु उनका प्रदर्शन किसी माध्यम व उपकरण के आधार पर हम दर्शा नहीं पा रहे हैं। समय है उस प्रकार के उपाय व उपकरणों को खोज निकालने का। समय है परिवर्धित आधुनिक विज्ञान के सहारे प्राचीन विज्ञान का अनुसन्धान करने का। समय है वैदिक साहित्य में शोध की गति को बनाने का तथा बढ़ाने का।

तेलुगु भाषा में निबद्ध इस ग्रन्थ के मुख्य विचारों को हिन्दी भाषा में प्रस्तुत करने के बाद अथवा प्रस्तुति के मध्य में उन विषयों का विमर्श स्थान स्थान पर प्रस्तुत किया गया है। कुछ स्थानों में विमर्श नाम से ही अपनी टिप्पणी को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। अधिकांश स्थानों में मुख्य

विषय का अवरोध न बनने की दृष्टि से अपने मन्तव्य को कोष्ठक () में प्रस्तुत किया है।

हिन्दी भाषा पर कहीं कहीं तेलुगु का प्रभाव पड़ सकता है। आचार्य के मुख्योद्देश्य तथा मूलोद्देश्यों में जहाँ जहाँ बाधा पहुँचने की सम्भावना है वहाँ वहाँ तेलुगु शब्दों का भी प्रयोग करके टिप्पणी प्रस्तुत की है। इस प्रकार प्रयुक्त शब्दों में मुख्य है कार्ति संज्ञक शब्द।

आज हिन्दी भाषा अवगमन की दृष्टि से तथा ग्रन्थ की दृष्टि से भिन्न पाया जाता है। वस्तुतः इस ग्रन्थ का निर्माण पाठकों को अपनी बात समझाने की दृष्टि से किया गया है। अतः हिन्दी में प्रयुक्त अन्यभाषा शब्दों का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से किया है। पूरब शब्द के स्थान में पूर्व शब्द का भी प्रयोग कहीं कहीं किया है। अतः पूरब तथा पूर्व शब्दों के स्थान में सर्वत्र पूर्व दिशा का ग्रहण करेंगे।

आशा है कि प्रस्तुत विषय शोध के नये आयाम प्रस्तुत करने में उपयुक्त रहेगा। सत्य को प्रदर्शित करना सत्य का निरूपण हेतु नहीं बल्कि सत्य का मानव कल्याण में प्रयोग करने हेतु आवश्यक है।

डॉ पी वी बी सुब्रह्मण्यम्

प्रथम अध्याय

पृथ्वी

धरती की उम्र क्या हो सकता है? धरती पर प्राणियों ने कितने वर्ष पहले पैर रखा? अथवा पृथ्वी के बनने के बाद कितने वर्षों के बाद प्राणिकोटि के रहने योग्य वातावरण बना होगा? क्या पृथ्वी के जन्म लेते ही प्राणियों ने भी जन्म लिये? पृथ्वी के साथ साथ ही प्राणि भी जन्म लिये? क्या सभी प्राणियों के साथ मानव ने भी इस धरती पर जन्म लिया? यदि प्राणियों के उद्भव के बाद आदमी जन्म लिया तो कितने अन्तराल के बाद? ऐसे तो नहीं की मानव के उद्भव होने के बाद ही अन्य प्राणियों ने जन्म लिये?

ये प्रश्न देखने के लिये अवश्य ही साधारण लगते हैं किन्तु धरती पर किसी भी बात को समझने के लिये अथवा किसी भी विषय को वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर निरूपित करने के लिये इन प्रश्नों का उत्तर अनिवार्य है। पृथ्वी के बारे में मानव ने जानने का प्रयास किया तो विज्ञान ने जन्म लिया। अभियान्त्रिकी विज्ञान हो या भूकैन्द्रिक सिद्धान्त का खण्डन हो या अन्य कई सिद्धान्त। सभी का सम्बन्ध सृष्टि से जुड़ा हुआ है।

1. धरती की उम्र लगभग 200 करोड वर्ष
2. धरती पर प्राणियों की स्थिति लगभग 30 करोड वर्षों से है।

3. जीन्स महोदय के अनुसार मानव की स्थिति धरती पर लगभग तीन लाख वर्षों से है।

वर्तमान विश्व की उत्पत्ति यादृच्छिक या अचानक हुई नहीं है। यह एक क्रम परिणाम के फल स्वरूप उद्भव हुआ है। इस पर कोई भी वस्तु व प्राणी अचानक उत्पन्न नहीं हो सकता है।

बीसवीं सदी के महान वैज्ञानिक जेम्स जीन्स महोदय के अनुसार इस धरती की उम्र लगभग दो सौ करोड़ वर्ष है। इनका यह अन्दाजा भारत के पञ्चाङ्गकारों की गणना से मेल खाता है। प्रायः प्रत्येक पञ्चाङ्ग में सृष्ट्यादि गत वर्षों का वर्णन किया जाता है। अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर वर्तमान वर्ष तक बीते हुए वर्षों की संख्या पञ्चाङ्ग में दी जाती है।

पञ्चाङ्गकारों के द्वारा दी गयी संख्या का आधार कल्पना व अन्दाजा नहीं है। इसके लिये निश्चित किये गये सिद्धान्त हैं। यहाँ विशेष रूप से ध्यातव्य विषय यह है कि नवीन पाश्चात्य वैज्ञानिकों के द्वारा पञ्चाङ्गकारों की यह गणना सत्यापित हो रही है।

आसमान में तारापुञ्ज अनेक हैं। इनके समूहों को ही नक्षत्र कहते हैं। रात के समय कोई भी आसमान को देखता है तो असंख्य तारे नजर आते हैं तथा इनको देखने के बाद कोई भी प्रफुल्लित व अचम्भित होता है।

काल्लेल नामक पाश्चात्य दार्शनिक की इन बातों पर गौर कीजिये – “ अरे! आसमान में सदा प्रकाशित होने वाले इन ताराओं के बारे में मैं जान नहीं पा रहा हूँ। इसमें कौन कौन सा नक्षत्र है यह बात कोई मुझे बतावें तो

कितना अच्छा रहेगा? नक्षत्रों का परिचय होने पर वह अध्वान्न नजर न आकर अपना घर जैसे सुन्दर दिखता।”

जर्मनी का दार्शनिक कैन्ट महोदय के ये वाक्य स्मरण करने योग्य है। “ इस विश्व में मेरी प्रशंसा पाने वाले तथा दिन प्रतिदिन प्रवर्धमान होने वाले दो ही वस्तु है। उसमें पहला अनन्तकोटि ताराओं से मेरे सर के ऊपर शोभायमान नभोरंग और दूसरा हमेशा मुझे नैतिक धर्मोपदेश करने वाली मेरे अन्तरात्मा”

विमर्श – भारत में अधिकांश पञ्चाङ्गों का निर्माण सूर्यसिद्धान्त के आधार पर अथवा सूर्यसिद्धान्त से बने करण ग्रन्थों से किया जाता है। वर्तमान में दो भिन्न सूर्यसिद्धान्त उपलब्ध है। उनमें से सूर्य और मयासुर के संवादरूप सूर्यसिद्धान्त का ही पञ्चाङ्ग निर्माण में प्रयोग दिखता है। उस सूर्यसिद्धान्त का निर्माण कृतयुग के अन्त में हुआ। कल्पादि से उस समय तक 1953720000 सौरवर्ष बीत चुके है। वर्तमान में कलियुग चल रहा है। अतः इस कृतयुगान्तमान में त्रेता के 1296000 सौरवर्ष, द्वापर के 864000 सौरवर्ष जोड़कर 1955880000 सौरवर्ष बनते हैं। इसमें कलियुग के 432000 सौरवर्षों के मान में से जो बीत चुके है उतना जोड़ देने पर कल्पादि से वर्तमान वर्ष तक बीते हुये वर्ष प्राप्त होते है। यह वर्षसंख्या जीन्स महोदय के द्वारा बताई गई संख्या से लगभग मेल खाती है।

सूर्याब्दसंख्यया ज्ञेया कृतस्यान्ते गता अमी।

खचतुष्कयमाद्यग्निशररन्ध्रनिशाकराः॥

सूर्यसिद्धान्त, मध्यमाधिकार, श्लो.47

कल्प के बराबर सृष्टिकर्ता (ब्रह्मा) का दिन है तथा उतने ही प्रमाण की रात्रि। इस प्रकार के दिनों से बने सौ वर्षों की आयु ब्रह्मा की है। अर्थात् वर्तमान स्रष्टा सौ वर्ष अपना दायित्व निर्वहण करके कार्य मुक्त होंगे। इस सन्दर्भ में शोध का अंश यह है कि पृथ्वी का आविर्भाव कल्पारम्भ में हुआ या ब्रह्मा जी के सृजन प्रक्रिया में। कल्प के बाद ब्रह्मा जी को सृष्टि में लगने वाले समय के बारे में विचार सूर्यसिद्धान्त में प्रस्तुत है। इसी अन्तराल को कल्प और सृष्टि के अन्तराल के रूप में जाना जाता है।

ग्रहर्क्षदेवदैत्यादि सृजतोऽस्य चराचरम्।

कृताद्विवेदा दिव्याब्दाः शतज्ज्ञा वेधसो गताः॥

सूर्यसिद्धान्तः, मध्यमाधिकारः, श्लो.24

किन्तु भास्कराचार्य आदि कुछ गणमान्य आचार्य सृष्टि और कल्प के अन्तराल को स्वीकार नहीं करते हैं। इन आचार्यों का भी खण्डन नहीं किया जा सकता है।

यतः सृष्टिरेषां दिनादौ दिनान्ते

लयस्तेषु सत्स्वेव तच्चारचिन्ता।

अतो युज्यते कुर्वते तां पुनर्ये

ऽप्यसत्स्वेषु तेभ्यो महद्भ्यो नमोस्तु॥

सिद्धान्तशिरोमणिः, म.अ, काल.अ, श्लो 27

ऐसे कहकर इनका भी मत का समर्थन नहीं किया जा सकता है। क्योंकि सृष्टि क्रमिक विकास के फलस्वरूप हो सकती है। सृष्टि एक दिन में अथवा एक झटके में नहीं हो सकती है।

इन सभी विचारों को धरती की उम्र के बारे में सोचते वक्त अवश्य सोचना ही पड़ेगा। धरती के बारे में जानने के लिये उसका आधार भूत विश्व का अध्ययन अनिवार्य है। कुल मिलाकर अन्तरिक्ष का अध्ययन पृथ्वी के बारे में विचार करते वक्त अपेक्षणीय है।

अतः तारों का , तारासमूहों का, उनके आकारों का, विश्व के अन्य बिन्दुओं का अध्ययन तथ्यों के अवगमन हेतु अपेक्षित है।

द्वितीयाध्याय

वेदविमर्श

आसमान व ज्योतिर्लोक एक महान ग्रन्थ के बराबर हैं। इस ग्रन्थ में चित्र विचित्र बातें, चमत्कारिक पहेलियाँ, बहुकठिन समस्यायें संकलित हैं। क्या हमारे पूर्वज इस ग्रन्थ को सही मार्ग में समझ पाए? क्या इसके अध्ययन में वे सफल हो सके? क्या वे इस में प्रदत्त समस्याओं का समाधान कर पायें हैं? इसी प्रकार से उत्पन्न होने वाले अनेक प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास ही यह वेदविमर्श है।

ऋग्वेद

विश्व के इतिहास में ऋग्वेद का क्या स्थान है? भरतवर्ष के परिप्रेक्ष्य में ऋग्वेद का क्या स्थान है? इन दोनों प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में ऋग्वेद पर विचार करना आवश्यक है। **माक्स मुल्लर** महोदय के अनुसार दोनों परिप्रेक्ष्यों में ऋग्वेद प्रथमगण्य है। ग्रिफ़ित महोदय के अनुसार आर्यजाति को पैत्रिक रूप से प्राप्त, अत्यन्त प्राचीन, परमपूज्य तथा शिरोधार्य ऋग्वेद ही है।

धरती के प्रारम्भिक मानव (आद्य मानव) के अनुभव, चिन्तन, किये गये महत्कार्य ऋग्वेद में ग्रन्थस्थ किये गये हैं। ऋग्वेद को जो समझ नहीं पायें वे अनेक प्रश्नों को खड़ा करते हैं। ये प्रश्न किसी समुदाय व जाति पर नहीं बल्कि भारतवर्ष पर हैं। भारतवर्ष में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति का यह

दायित्व बनता है कि वे इन प्रश्नों का सही तथा समुचित उत्तर दें। समुचित उत्तर का अर्थ यह है कि उत्तर समग्र तथा सप्रमाण हो एवं प्रश्न करने वाला निरुत्तर हो जाए।

उनके द्वारा साधे गये प्रश्न इस प्रकार हैं —

1. झाड़ियाँ और लकड़ियों को स्वाहाकार के साथ हवन कुण्ड में डालकर उससे निकलने वाले धुआँ के कारण आंख मलनेवाले आपके महर्षि कभी खगोल के वैभव को परख पायें हैं?
2. कभी वे गौर से सूर्य को परखे हैं?
3. कभी वे चाँदिनी से प्रफुल्लित चन्द्रमा का अवलोकन कर पाये हैं?
4. द्वादशराश्यात्मक राशिचक्र की प्रशंसा तथा मेषादि राशियों का विवरण ऋग्वेद में कहीं है?

ये प्रश्न प्लन्केट महोदय के द्वारा विरचित प्राचीन पञ्चाङ्ग तथा नक्षत्र समूह नामक ग्रन्थ में दिये गये हैं। इन प्रश्नों को उद्दंकित करने के पश्चात् वे इस प्रकार लिखते हैं -

“ ऋग्वेद निगूढ और अब्द्धत सूक्तों से युक्त संहिता है। उसकी गहराई जानने की इच्छा से जो निरन्तर उसका अध्ययन करते हैं वे भी मानते हैं कि उसकी गहराई जान नहीं पाए। प्रकृति सिद्ध शक्तियों को तथा कार्यगतियों का स्वरूप आरोपित कर उन्हें देवताओं के नाम से महर्षिजन व्यवहार किया है इस बात को सभी स्वीकारते हैं। किन्तु वैदिक गाथाओं को इतमित्थतया अर्थ स्वीकारने में पण्डितों में भी अभिप्राय भेद है।

अनेकानेक अब तक अनेक प्रकार के प्रयास करके व्याख्या करने का प्रयास किये हैं। इस क्रम में ऋग्वेद के अनेक अर्थ और अनेक टीकाएं प्रकाश में आये हैं। वैदिक मन्त्रों को समझने के क्रम में अनेक ऊहापोहों के आधार पर अनेक टीकाओं का निर्माण किया गया है। अब तक जो भी कुछ भी किया है तथा जितनी भी टीकायें इसकी निकली है तब भी उन सब का पर्यवसान एक ही है। ऋग्वेद संहिता के अनेक भागों का अर्थ बताने वाले कोई नहीं है। वेद का अधिकांश भाग अज्ञेय ही रह गया। वेदार्थ पेटी को खोल कर अर्थ दर्शानेवाली कुंजी गुम हो गयी है। आज के व्याख्याताओं को वह कुंजी प्राप्त नहीं है।“

खोई हुआ चाबी मिल जाय तो कितना अच्छा रहेगा? वैदिक ऋषि मन्त्रद्रष्टा हैं। “श्रुतिं पश्यन्ति मुनयः” । उनकी दो महत्वपूर्ण शक्तियाँ हैं। पहली सहज सिद्ध कविताशक्ति और दूसरी सूक्ष्मदृष्टि से प्रकृति का सूक्ष्म परिशीलन कर खगोल वेध के आधार पर मुख्य मुख्य बातों को ग्रन्थस्थ कर पाने की वैज्ञानिक शक्ति।

नभोरंग के ज्योतिर्वेद संपुट को वे भली भांति पहचानते हैं। उसमें प्रदत्त समस्याओं का वे श्लाघनीय समाधान प्राप्त किये हैं। ज्योतिषिण्डों के गमनविशेषताओं को तदेकदृष्टि से अवलोकन करके देखा गया, समझा गया तथा प्राप्त किए गए विषयों का वेदमन्त्र नामक सुन्दर काव्यों के रूप में वे ग्रन्थस्थ किये हुये हैं।

महर्षियों की कविताशैली, सूक्ष्मदृष्टि, सूक्ष्म खगोलावलोकन को समझने के लिये ऋग्वेद के इन मन्त्रों को देखना है –

1. अयास्यऋषि। ऋग्वेद 10.68.11.

“अभिश्वावं न कृशनोभरश्चं नक्षत्रेभिः पितरो द्याम पिंशप्। रात्र्यन्तमो
अदधुज्योति रहसि”

पितर दिन में सूर्यकान्ति को रात में अन्धरे को फैलाये थे। काले घोड़ो को मोतियों के जाली से अलंकृत किये जैसे रात के अन्धरे में नभोरंग बिन्दियों से अलंकृत किया।

2. शुनश्शेषऋषि। ऋग्वेद 01.24.10

“अमीयऋक्षा निहिता स उच्चा। नक्तं ददृशो कुहचिद्वेयुः”

अपने ऊपर अत्यन्त दूर आकाश में रात को अत्यद्भुत प्रकाश के साथ नजर आने वाले तारा दिन में क्यों नहीं दिखते है? कहा जाते है? क्या हो जाते है?

3. प्रस्कण्वऋषि ऋग्वेद 01.50.02

“अपत्य ते तायवो यथा नक्षत्रायन्त्यक्तुभिः सूराय विश्वचक्षुसे”

रात में दिव्यकिरणों से प्रकाशित नक्षत्र विश्वचक्षु सूर्यभगवान जब उदित होते है तो चोर जैसे छिप जाते है। ये कैसाचित्र है।

4. पराशर ऋषि 1-68-5. इस मन्त्र में अग्नि देवता नक्षत्ररूपी आभूषणों से आसमान में सुन्दर रूप से अलंकृत हुआ वर्णित है।

5. ऋग्वेद 1-24-48 मन्त्र में दीर्घतमऋषि ने संवत्सरात्मक कालचक्र का वर्णन किया है।

“द्वादश प्रथयः चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि उतिच्छिजेत तस्मिन्त्साकं

त्रिशतान शंकवोर्सिताः षष्टिर्न चलाचलासः”

इस मन्त्र में वर्णित चक्र संवत्सरात्मक कालचक्र है। इस चक्र की नेमि बारह भागों में बटा है। चलते हुये चक्र का जो हिस्सा जमीन को स्पर्श करता है उसे नेमि कहते है। यहाँ बारहवां भाग राशि का ही अन्वय है। इस राशिचक्र की तीन नाभि बतायी गयी हैं। तीन नाभी वृत्त में नहीं बल्कि गोल में होते है। इस चक्र में रेखायें तीनसौ साठ है। प्रत्येक रेखा एक एक अंश का भी प्रतीक है।

दीर्घतमऋषि ने स्पष्टतया इसका वर्णन किया है —

“द्वादशारं नहितज्जराय वर्वर्ति चक्रं परिधामृतस्य।

आपुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्रि सप्तशतानि विंशतिश्चतस्थुः”

एक के पीछे एक दिन और रात्रि का मिथुन तीन सौ साठ जोड़ियों में चक्र में संवरित है। इसी विषय का वर्णन व्यास महर्षि ने महाभारत में किया है।

त्रीण्यर्पितान्यत्र शतानि मध्ये

षष्टिश्च नित्यं चरति ध्रुवेस्मिन्।

चक्रे चतुर्विंशति पर्वयोगे

षड्वै कुमाराः परिवर्तयन्ति॥

तन्त्रं चेदं विश्वरूपे युवत्यौ

वयतस्तन्तून् सततं वर्तयन्त्यौ।

कृष्णान् सितांश्चैव विवर्तयन्त्यौ

भूतान्यजस्रं भुवनानि चैव॥

ये ते स्त्रियो धाता विधाता च ये च ते कृष्णास्सिता

स्तंतवस्ते रात्र्यहानि यदपि तच्चक्रं द्वादशारं षड्वै

कुमाराः परिवर्तयन्ति तेनेपिषडृतवः संवत्सरश्चक्रम्।

रेखागणित के अनुसार एक चक्र में 360 अंश होते हैं। चक्र को दो समान भागों में विभक्त करने पर चाप कहलाता है। चाप का आधा हिस्सा तुरीय कहलाता है। तुरीय में कोण 90 अंश का होता है। भास्कराचार्य कहते हैं -

“दलीकृतं चक्रमुशन्ति चापं

कोदण्डखण्डं खलु तुर्यगोलम्”

समकोण 90 अंश का होता है तथा रेखागणित, त्रिकोण गणित आदि समस्त गणितों का महत्वपूर्ण आधार यह समकोण ही है। यही गणित की नींव है। इस नींव को डालने वाले महर्षि दीर्घतम हैं। अर्थात् विश्व को गणित देनेवाले अथवा गणित का पितामह यही दीर्घतम ऋषि हैं। गणित का जो बीज दीर्घतम ने डाला वही आज प्रवर्धित रूप में विभिन्न विज्ञानों की शाखाओं के रूप में दर्शन दे रहा है।

धरती को सूर्य के चारों ओर एक भ्रमण करने में जो समय लगता है उसे सौरवर्ष कहते हैं। इसके लिये 365 दिन और लगभग 06 घंटे का समय लगता है। चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करने में 29 दिन और 12 घंटे का समय लेता है जो एक चान्द्रमास कहलाता है। अर्थात् एक वर्ष के बारह चान्द्रमासों में 354 दिन होते हैं। अर्थात् चान्द्रवर्ष तथा सौरवर्ष का अन्तर

लगभग 11 दिन का होता है। इस अन्तर में सामंजस्य बनाने के लिये अधिमास की कल्पना की गई है। सामंजस्य के रूप में प्रकल्पित अधिमास के बारे में ऋग्वेद में इस प्रकार लिखा मिलता है—

“वेदमासो ध्रुतव्रतो द्वादशः प्रजावतः वेदाय उपजायते”

ऋग्वेद 01.25.08 में वरुण सूक्त के अन्तर्गत वर्णित इस सन्दर्भ में अधिमास को उपजात बताया है।

शास्त्रविज्ञान में मापन मुख्य होता है। काल के मापन हेतु प्रयुक्त विधाओं को कालमान नाम से जाना जाता है। मान शब्द का आधार चन्द्रमा है। वैज्ञानिक तथा भाषाविदों का मानना है कि इसी मान शब्द के आधार पर अंग्रेजी में चन्द्रमा के लिये मून शब्द उत्पन्न हुआ। चन्द्रमा की पृथ्वी की एक परिक्रमा एक माह कहलाता है। अंग्रेजी में मास के लिये moonth से एक ओकार कम होकर month शब्द बना।

ग्रहण

तुरीय चाप का अर्थ भाग होता है। इसके बारे में पहले भी चर्चा कर चुके हैं। वैदिक ऋषि ग्रहण समय में तुरीय यन्त्र का प्रयोग करके ग्रहण सम्बन्धि विषयों को जानते थे। अत्रि महर्षि महान खगोल वित् तथा ज्योतिषशास्त्रवेत्ता हैं जो तुरीय यन्त्र का प्रयोग ग्रहण के समय में किया करते थे। ऋग्वेद का 5.40.6 मन्त्र “स्वर्भानोरथय...गूहं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणा विन्ददत्रिः” इस बात की पुष्टि करती है। तुरीय यन्त्र से सम्बन्धित अधिक जानकारी भास्कराचार्य के गोलाध्याय में प्राप्त होता है।

यह एक उद्धरण पर्याप्त है इस बात को समझने का कि तुरीय एक गणित सम्बन्धि यन्त्र है और वैदिक काल में इसका प्रयोग खगोल वेध में करते थे तथा सांकेतिक पदावली के रूप में तुरीय शब्द का प्रयोग होता था।

आचार्य भास्कर के बाद के सायनाचार्य ने वेदों का भाष्य लिखा है। किन्तु सायनचार्य ने अपने भाष्य में तुरीय के लिये सांकेतिक अर्थ न लेकर संख्यावाचक अर्थ ग्रहण किया था। तुरीय का संख्यावाचक अर्थ है चौथा।

नक्षत्र सूर्यगोल

टिमटिमाते छोटे आकार में दर्शन देने वाले तारे सूर्य गोल से भी आकार में बड़े बड़े होते हैं। आज के आंग्लकवि तारों को सूर्यगोल के बराबर में वर्णित किये हैं। किन्तु ऋग्वेद के “सप्तदिशो नाना सूर्याः” (9.114-3) मन्त्र में यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक ऋषि को यह जानकारी थी।

नक्षत्रपरिमाण

मेथातिथि ऋषि भू परिमाण, सूर्यगोल का परिमाण, ऊर्ध्वलोक की परिमिति आदि की तुलना इन्द्र से करते हैं। इन्द्र और कोई नहीं है ज्येष्ठा नक्षत्र ही है। कृष्णयजुर्वेद के नक्षत्रेष्टि में “ज्येष्ठा नक्षत्रमिन्द्रो देवता” बताया गया है। आज के वैज्ञानिक बड़े बड़े यन्त्रों से वेध करने के बाद स्पष्ट कर चुके हैं कि ज्येष्ठा नक्षत्र सूर्य से आकार में नौ करोड़ गुणा बड़ा है। मेथातिथि कहते हैं कि सौ करोड़ सूर्य भी एक इन्द्र के बराबर नहीं हो सकते हैं।

“यद्याव इन्द्रते शतं शतं भूमिरुतस्युः। नत्त्यावज्जिस्सहस्रम् सूर्या

अनुनजातमष्टरोदसी” (ऋग्वेद, 8-59-5)

जेम्स जीन्स महोदय के अनुसार ज्येष्ठानक्षत्र प्रकाश में सूर्य से चार हजार गुणा तथा परिमाण में नौ करोड़ गुणा बड़ा है। इसलिये ज्येष्ठा नक्षत्र को उस नाम से वैदिक ऋषियों ने व्यवहार किया। ज्येष्ठा का अर्थ बड़ा है।

गंगोत्पत्ति

पञ्चाङ्गकार वैशाखशुक्लसप्तमी के दिन गंगावतरण तथा गंगोत्पत्ति लिखते हैं। उस दिन शाम को, सूर्यास्त के बाद, पूर्व दिशा की ओर विष्णुपाद नक्षत्र तथा उसमें प्रादुर्भाव होते नजर आने वाली आकाशगंगा का स्वरूप दर्शन देता है।

दिविजगंगाप्रवाह हंसपद को पार कर पश्चिम की ओर बहकर अन्त में आर्द्रा नक्षत्र में टिका हुआ दृश्य स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। उसके पहले के दिनों में देखना चाहने पर भी विष्णुपाद नक्षत्र उदित ही नहीं होता है। उसके बाद के दिनों में आर्द्रा नक्षत्र अस्त होने के कारण नजर नहीं आता है। विष्णुपद में आविर्भाव होकर आकाश गंगा शिवजटाजूट तक जाने वाला दिव्य दृश्य उसी दिन दर्शन देने के कारण ही पञ्चाङ्गों में गंगावतरण लिखा जाता है।

खगोल के दृश्यों को कितनी बारीकी से समझकर उनके अनुरूप एक एक दिन का प्रामुख्य प्राचीन लोगों ने किस तरीके से बताया है उसका ज्ञान

इस आकाशगंगा वर्णन से समझ में आता है। शिवमहिम्न स्तोत्र में भी आकाशगंगा का वर्णन नजर आता है।

“नेदं नभोमण्डलमम्बुराशिनैताश्च ताराः नवफेनभंगाः”

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वा रम्यः पृषति लघुदृष्टिः शिरसि ते
जगद्द्वीपाकारं जगति वलयं तेन कृतमि
त्यनन्यैवोन्नेयं ध्वतमहित दिव्यं तव वपुः॥

नीहारिका

जेम्स जीन्स महोदय के अनुसार सृष्टि इस प्रकार हुई है – “पहले अस्पष्ट स्थिति थी। उस स्थिति से नीहारसदृश अवस्था। उस अवस्था से नक्षत्रों की उत्पत्ति। उसके बाद नक्षत्रों में जोड़ियाँ, जोड़ियों से छोटे तारों की उत्पत्ति, उनसे ग्रह, ग्रहों से उपग्रह उत्पन्न हुये हैं। अपनी धरती सूर्य के चारों ओर भ्रमण करने वाला उपग्रह है। “सृष्टि क्रम के बारे में नवीन वैज्ञानिकों का यह अभिप्राय है।

- सृष्टि क्रम व विकास के सन्दर्भ में प्राचीन महर्षि क्या कहते हैं?
- जो प्राचीन महर्षि बताये हैं उसको नवीन वैज्ञानिक स्वीकारते हैं? या उपहास किया है?

प्राचीन महर्षियों के अनुसार सृष्टि आकस्मिक घटना नहीं है। यह एक क्रमिक विकास का फल है। उनके अनुसार सृष्टि का क्रम इस प्रकार है—

“आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधीभ्योऽन्नं, अन्नात्पुरुषः”

प्रलय के बाद आकाश से वायु पदार्थ उत्पन्न होने के समय धुंध जैसे लगने वाली सफेद वायु खगोल में नजर आती है। वायुओं के वे सफेद बादल आपस में चक्कर मारते हुये विभिन्न प्रकार के जानवरों के रूप में आकाश में दिखाई दे रहे है। उनमें कुछ चक्राकार में, कुछ शंखाकार में, एक केकडा के रूप में, एक उल्लू के रूप में, एक व्यायाम करने वाले मुद्रर के रूप में, कुछ कपास के बीजों के रूप में कुछ प्याज के रूप में, कुछ कन्दमूल के रूप में, कुछ कडे हल्दी के रूप में आसमान में उडते नजर आ रहे है। ज्योतिषशास्त्रवेत्ता अब तक इस प्रकार के बीस लाख बादलों को पहचाने हैं।

इन सभी बादलों में महत्त्वपूर्ण है वीणामण्डल में दिखाई देने वाला चक्राकार का बादल। यह विभूति के टीका के सदृश नजर आने के कारण आज के वैज्ञानिक इसे चक्राकार नीहारिका कहते है। अंग्रेजी में इसे ring nebula कहते हैं।

पुराणों के अनुसार ब्रह्मा पद्मासन, चतुर्मुख, तथा वाणीपति है और सरस्वती वीणापाणि। ब्रह्मा और सरस्वती का वाहन हंस है। पद्माकृति के बादल के पास ब्रह्मा और सरस्वती की स्थिति एक विशेष बात है।

कैसे विशेष बात है?

पद्माकृति की नीहारिका से एक तारा निकला। बाद में वह एक तारा दो तारों में बदला। फिर उन दोनों ताराओं से प्रत्येक तारा दो दो ताराओं में

परिवर्तित हुआ। जोड़े ताराओं में दोनों तारा एक दूसरे के परिक्रमा करते हैं तथा जोड़े दोनों भी आपस में परिक्रमा करते हैं। यह बात आज के यन्त्रों से भी सत्यापित हो चुकी है। ये ही चार तारे ब्रह्माजी के चार मुख महर्षियों के द्वारा बताये गये हैं। यह चतुर्मुख ब्रह्मा पद्मासन में बैठे हैं तथा इन्ही मुखों में सरस्वती है। सरस्वती के वीणा धारण के कारण इन तारों के समूह का वीणामण्डल नाम सिद्ध हुआ।

सृष्टिकारक ब्रह्मा

“नतं विदधाय इमा जना नान्यदुष्माकमन्तं बभूव नीहारेण प्राकृता जल्य्या चासुत्वप उक्थशां सश्चरन्ति।“ (ऋग्वेद 10.82.07)

“अन्यदन्यद सूर्य वसानानिमायिनो मामिरे रूपमस्मिन्”

(ऋग्वेद 3.38.7)

पहले मन्त्र में बताया गया है कि एक नीहारिका रूप का बादल आपके बीच में उत्पन्न हुआ है। सफेद वर्ण में गाढी धुंध के बराबर में दिखने वाले उस तारारूपी बादल को नीहारप्राकृत कहना युक्तिसंगत है। इसके लिये नीहार से बढ़कर कोई और शब्द संस्कृत भाषा में नहीं है।

निपुण कर्मकार एक सफेद बादल कर रहे हैं तथा वह नीहार प्राकृत दिख रहा है। यही उस मन्त्र का अर्थ है। दूसरा मन्त्र भी नूतन रूप प्राप्त करने वाले तारारूपी बादल की ही प्रशंसा कर रहा है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक ऋषि आकाश में दृश्यादृश्य रूपी धुंध जैसे लगने वाले बादलों को, उन बादलों से आवृत ताराओं को, उनके विभिन्न आकारों को सूक्ष्मरूप से अवलोकन करके वेद में ग्रन्थस्थ किया हैं।

प्राचीन महर्षि ये भी स्पष्ट कर चुके हैं कि उन्हीं नीहारिकाओं में से विश्व की उत्पत्ति हुई है।

“ अजस्य नाभा वध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थु”
(ऋग्वेद 10.82.06)

“in that vast gaseous cloud, in that nebula, which once floated in the death-cold realms of speech, there were the elements of all that is. All that is, all that was, all that ever will be came from that gas.”Macmillan

मेकमिलन महोदय का यह कथन उनके द्वारा लिखित ग्रन्थ के 58 वे पृष्ठ में है। यह ग्रन्थ हमारी पृथ्वी की उत्पत्ति आदि का वर्णन करता है।

मेकमिलन महोदय के ये वचन “यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थु” इस वेदमन्त्र की हूँ बहूँ व्याख्या लग रही है। वेद में बताये गये प्राकृतिक सत्त्यों को यह वाक्य किस प्रकार सत्यापित कर रहा है यह ध्यातव्य विषय है।

विमर्श – पूरा प्रकरण वेद में बताये गये वैज्ञानिक तथ्यों पर प्रकाश डालने की बात पर जोर दे रहा है। प्लन्केट महोदय की उक्ति से यह पता चल रहा है कि जितने भी वेद के भाष्य बने वे सभी इस बात को स्पष्ट कर रहे हैं

कि वेदों का भाष्य (करने) लिखने के लिये और भी आयाम बचे हैं। ऊपर के कथनों से यह भी स्पष्ट हो रहा है कि वैदिक वाङ्मय को विविध परिप्रेक्ष्यों में देखने तथा परखने की आवश्यकता है।

लेखक के द्वारा किये गए तुरीय यन्त्र का वर्णन शोध के एक नये आयाम को उजागर कर रहा है। तुरीय शब्द का प्रयोग, जो सांकेतिक पद के रूप में हुआ है, सामान्य अर्थ में सायनाचार्य के द्वारा ग्रहण करने के कारण मन्त्र का खगोलीय वेधपरक पक्ष उजागर नहीं हो पाया। इस कथन का आशय यह है कि सम्पूर्ण वैदिक संहिताओं का सांकेतिक पद परिप्रेक्ष्य में भाष्य करना अपेक्षित तथा समसामयिक भी है।

यह प्रकरण और भी एक शोध आयाम पर प्रकाश डाल रहा है। वैदिक वाङ्मय के विभिन्न मन्त्रों के आधार पर सृष्टि विचार पर गहन शोध तथा अध्ययन अपेक्षित है तथा इससे सम्बन्धित समस्त विषयों का तुलनात्मक समीक्षात्मक तथा अनुसन्धानात्मक अध्ययन आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में तथा आधुनिक पाश्चात्य रचनाकारों के परिप्रेक्ष्य में अवश्य होना चाहिये। इस अध्ययन से अवश्य ही वैदिक वाङ्मय के वैज्ञानिक पक्ष का तथा समग्रता सम्पूर्णता तथा सत्यता का भी सत्यापन हो सकता है। यद्यपि सत्यापन शोध का आशय नहीं रहता है तथापि इस सत्यापन से सम्भव होने वाली विश्वशान्ति तथा सामाजिक कल्याण को अवश्य ही ध्यान में रखना चाहिये। इस प्रकार के अध्ययन “वेदाः सर्वहितार्थाय” इस वचन को सिद्ध कर सकते हैं।

तृतीयाध्याय

तारासमूह और देवता

तारों के बारे में वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। ज्योतिर्लोक को देखने के लिये हजारों आंखों की आवश्यकता है। आंग्लकवि षेल्सी के अनुसार ज्योतिर्लोक दिव्यधाम है। हीमन्ससति नामक कवयित्री के वर्णन का अवलोकन कीजिये। “ एक एक तारा एक एक लोक है। उन ब्रह्माण्डों के सामने हमारी पृथ्वी की कोई गिनती ही नहीं। एक खेलने वाली गोली के बराबर। इस सृष्टि में सूर्य की एक जुगुनू के बराबर की हैसियत है। अब सूर्य का ही यह हाल है तो पृथ्वी का क्या होगा? जब पृथ्वी का ये हाल है तो मानव का क्या कहना? वह मानव सूक्ष्माति सूक्ष्म क्रिमि के बराबर है। “

खगोल का वैदिक ऋषि बहुत सूक्ष्म दृष्टि से परिशीलन करते थे। ऋग्वेद के हर एक मन्त्र को गौर से अध्ययन करने पर पता चलता है कि ऋग्वैदिक ऋषि नक्षत्रविशारद समझे जाते हैं। वे जिस दृष्टि से खगोल का वेध किये थे उसी दृष्टि से वैदिक वाक्यों का व मन्त्रों का हमें समन्वय करना चाहिये। अन्यथा वेद का अर्थ स्पष्ट नहीं हो सकता है।

तारासमुदाय

पाश्चात्यविद्वानों के अनुसार आसमान में 110 तारासमुदाय हैं। विलियम् पेक् महोदय ने अपने ग्रन्थ तारासमुदाय तथा उनको पहचानने

की विधि में इन एकसौ दस तारासमुदायों का वर्णन किया है। इन एकसौ दस तारासमुदायों का वर्गीकरण उस ग्रन्थ में तीन भागों में किया गया।

अत्यन्त प्राचीन काल से परिचित तारा समूहों की संख्या अड़तालीस है। इनमें इक्कीस उत्तराकाश में, आकाश के मध्य में द्वादश राशियों के रूप में दर्शन देने वाले 12 तारासमूह, दक्षिणाकाश में दिखाई देने वाले पन्द्रह समूह। इनके अलावा नवीनों के द्वारा पहचाने गये तारासमूह बासठ हैं। नवीन का अर्थ है क्रिस्त के पहले 200 वर्षों से लेकर क्रिस्त के बाद 1800 वर्षों तक दो हजार वर्षों में गवेषकों के द्वारा पहचाने गये समूह।

बाद के बासठ तारासमूहों में पच्चीस की कोई प्रधानता नहीं है। व्यवहार में नहीं लेने वाले इन पच्चीस समूहों के अलावा सैंतीस तारासमुदाय तथा प्राचीन अड़तालीस मिलाकर कुल पचासी समूह आधुनिक ज्योतिष ग्रन्थों में वर्णित तथा वर्गीकृत हैं।

ये पचासी समूहों का उद्धरण तथा वर्णन वेद में तथा पुराणों में प्राप्त होना महदाश्चर्य की बात है। इनमें से कुछ का नाम पाश्चात्य विद्वानों में विकृत रूप का धारण कर आज भी प्रचलन में नजर आते हैं। यहाँ पर कुछ की उदाहरणार्थ प्रस्तुति की जा रही है।

वैदिक वाङ्मय में वर्णित कुछ नामों का पश्चिमी देशों के व्यावहारिक परम्परा में प्राप्त कुछ नाम इस प्रकार है —

- (क) भूतेश — बूटिस (Bootes)
- (ख) पूर्वश्वान — प्रोश्यान् (Procyon)

- (ग) परिवृत्त – बिलाट्रिक्स (Bellatrix)
- (घ) पेद्यघाश्व – पेगसस् (Pegasus)
- (ङ) हरिकुलेश – हेर्क्युलस् (Hercules)

सूर्यादिग्रह आकाश में अपने मर्जी से नहीं चल सकते हैं। ये उत्तरी ध्रुव में तथा दक्षिणी ध्रुव में दर्शन नहीं देते हैं। आकाश के बीच में सत्ताईस नक्षत्रों का जो मार्ग बना है उस मार्ग में ये चलते हैं। इस मार्ग को प्राचीन महर्षि क्रान्तिवृत्त नाम से पुकारते हैं। इसी को पाश्चात्य लोग एक्लिप्टिक नाम से व्यवहार में प्रयोग करते हैं।

चन्द्रमा इस मार्ग की एक परिक्रमा सत्ताईस दिनों में कर लेता है। अतः इस मार्ग को सत्ताईस भागों में विभाजित किया है। एक एक भाग को अश्विनी भरणी आदि नामों से सज्जित किया है। आम आदमी की समझ में आने के लिये इसी बात को कहानी के रूप में पूर्वज लोगों ने वर्णित किया है। उनके अनुसार चन्द्रमा की सत्ताईस पत्नियाँ हैं तथा वह हरेक रात्रि एक एक के पास रहता है। इस कथा का सार यह है कि चन्द्रमा एक एक नक्षत्र में एक एक रात गुजारता है।

नक्षत्रों के आधार पर मासों के नाम

कृत्तिकादि नक्षत्रों में चन्द्रमा पूर्णिमासि के रहने पर कार्तिकादि मास होते हैं। अर्थात् जिस पूर्णिमासि को चन्द्रमा कृत्तिका में रहता है उस माह का नाम कार्तिक होगा। इसी तरह मृगशिरा में रहने पर मार्गशीर्ष, पुष्य में रहने

पर पौष, मघा में माघ, फल्गुनी में फाल्गुन, चित्रा में चैत्र, विशाखा में वैशाख, ज्येष्ठा में ज्येष्ठ, आषाढा में आषाढ, श्रवण में श्रावण, भाद्रपदा में भाद्रपद, अश्विनी में आश्विन, महीना होता है।

सूर्यसिद्धान्त के अनुसार

नक्षत्रनाम्ना मसास्तु ज्ञेयाः पर्वान्तयोगतः॥

कार्तिक्यादिषु संयोगे कृत्तिकादि द्वयम् द्वयम्।

अन्त्योपान्त्यौ पञ्चमश्च त्रिधा मासत्रयं स्मृतम्॥

मानाध्याय, श्लो 15-26

नक्षत्रसंगमकाल (कार्ति)

सूर्य का जिस नक्षत्र के साथ संगम होता है उस नक्षत्र का कार्ति होता है। अर्थात् सूर्य की स्थिति को नक्षत्रकार्ति के नाम से जाना जाता है।

एक तारा व तारासमूह कार्ति में तेरह दिन रहकर सूर्य के अग्रिम तारा व तारासमूह में प्रवेश करते ही सूर्योदय के पहले पूर्व में उदित होता है। इसी उदय को पश्चिमी लोग हेलिकल राइसिंग नाम से व्यवहार करते हैं।

आज सूर्योदय के पहले जो तारा उदित हुआ वह कल सूर्योदय के चार मिनट पहले, परसों आठ मिनट पहले, उससे आगे दिन 12 मिनट पहले उदित होता है। इस प्रकार प्रतिदिन चार चार मिनट तारों का उदय आगे बढ़ता है। इस प्रकार पन्द्रह दिनों में यह अन्तर प्रारम्भिक उदय से साठ

मिनट आगे चला जाता है। इसी तरह एक महीने के बाद दो घंटे पहले, छः महीने के बाद 12 घंटे पहले उदित होता है। अर्थात् वह तारा सूर्यास्त के बाद पूर्व में उदित होता है। इसी उदय को पाश्चात्य लोगों के द्वारा एक्रानिकल् राइसिंग कहलाता है।

- एक एक नक्षत्र से जब सूर्य का संगम होता है व जब नक्षत्र का कार्ति होता है तो पृथ्वी पर भौतिक स्थिति किस प्रकार होती है?
- वह तारा पहली बार सूर्योदय के पहले जब उदित हुआ तब क्या परिस्थिति होती है?
- वही तारा छः महीनों के बाद उदित होता है तब भौगोलिक स्थिति कैसी रहती है?

महर्षियों के द्वारा जो जो विश्लेषण खगोलीय स्थितियों का किया गया वे इन प्रश्नों का सटीक उत्तर प्रदान करते हैं। इतना ही नहीं इन्हीं विश्लेषणों के आधार पर महर्षियों ने आचार व्यवहार आदि का निर्णय किया है जो आज भी भारतवर्ष में आचरण में नजर आते हैं।

(ग्रन्थकार के द्वारा प्रयुक्त कार्ति शब्द का भाषान्तरण के बाद भी प्रयोग यहाँ किया गया है। ध्यातव्य है कि महाभारत तथा रामायण में कार्त एवं कार्तान्तिक शब्दों का प्रयोग दिखता है। कार्तान्तिक शब्द का अर्थ निघन्टु के अनुसार ज्योतिषी है। सिद्धान्त को कार्तान्त भी कहते हैं तथा नरकाधिपति यम का भी कार्तान्त नाम है।

आन्ध्रप्रदेश में कार्ति शब्द का प्रयोग आज भी दैनन्दिन व्यवहार में किया जाता है। सूर्य के गमन के आधार पर मौसम का विचार करते समय इस शब्द का प्रयोग अत्यधिक रूप से किया जाता है।

उदाहरण के लिये —

कहते हैं रोहिणी कार्ति में ओखले में दरार पड़ते हैं। अर्थात् जब सूर्य रोहिणी नक्षत्र में रहता है तब आन्ध्रप्रदेश में सूर्य का ताप ओखले में भी दरार पैदा करने की स्थिति में होता है।

इन सभी स्थितियों को ध्यान में रखते हुये तेलुगु भाषा में बहु प्रचलित शब्द का प्रयोग यहाँ पर किया गया है। इसके स्थान में “सूर्य का नक्षत्र स्थितिकाल” यह अर्थ लेकर व्यवहार कर सकते हैं।)

वैदिक काल में खगोल वेध

पूरे वर्ष में एक तारा वा तारासमूह सूर्योदय के पहले एक ही बार पूर्व में उदित हो सकता है। यह उदय हेलिकल राईसिंग के नाम से जाना जाता है। उस तारा का उदय प्रतिदिन चार चार मिनट पीछे चला जाता है। इस बात का पता महर्षियों को सूर्योदय के पहले ताराओं के वेध करने पर ही चला है। वह भी वेध कार्य एक या दो दिन नहीं बल्कि एक निरन्तर प्रक्रिया के रूप में करने पर ही सम्भव है।

ब्रह्म मुहूर्तकाल में निरन्तर वेध करने पर ही सूर्य के राशि संचार का पता चल सकता है। महर्षियों के द्वारा प्रबोधिक कालसाधन प्रक्रिया आज की वैज्ञानिक दृष्टि से भी सिद्ध हो चुकी है। इस सन्दर्भ में

बालगंगाधर तिलक के द्वारा उद्धृत तैत्तिरीय ब्राह्मण के वचन परिशीलन योग्य हैं।

“यत्पुण्यं नक्षत्रं तद्धृत्कुर्वीतोपव्युषम्। यदा वै सूर्य उदेति अथ नक्षत्रं नैति। तावत्कुर्वीत यत्कारी स्यात्। पुण्याह एव कुरुते।“

(तैत्तिरीय ब्राह्मण, 1.5.2-1, ओरियान् पृष्ठ 18, 33)

विभिन्न नक्षत्रों में सूर्य के रहने पर तथा सूर्य के पहले विभिन्न नक्षत्रों के प्रथम उदय के समय पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले भौगोलिक स्थितियों का अध्ययन करने के उपरान्त महर्षियों ने उन नक्षत्रों को दैवत्व का आरोपण किया तथा वह नक्षत्रदेवता ही उन भौगोलिक स्थितियों का कारण बताया गया है। नीचे दिये गये कुछ दृष्टान्त इस बात को स्पष्ट करते हैं।

कृत्तिका का देवता अग्नि

जब सूर्यभगवान कृत्तिका नक्षत्र में प्रवेश करते हैं उस समय भारत में लू चलती है तथा इस कारण जनता पीड़ित होती है। इतना ताप किसी भी दूसरे महीने में महसूस करने को नहीं मिलता है। मित्र कहे जाने वाले सूर्य इसी महीने में इस प्रकार व्यवहार क्यों करते हैं इस प्रश्न का एक मात्र उत्तर है सहवास दोष। कृत्तिका नक्षत्र के साथ सहवास के कारण ही सूर्य का यह स्वरूप बनता है। केवल कृत्तिका के साथ रहने पर यह हालात है तो वास्तव में कृत्तिका का क्या स्वरूप होगा? तैत्तिरीय संहिता के चतुर्थ काण्ड में प्रदत्त

नक्षत्रेष्टि में बताया गया है “ कृत्तिकानक्षत्रमग्निर्देवता “। अर्थात् कृत्तिका नक्षत्र का अधिदेवता व स्वामी अग्निदेव है।

स्वाती का वायुदैवत्व

वैशाख महीने के प्रारम्भिक दिनों में पूर्व में स्वाती और चित्रा नक्षत्र तोरण के खम्भे जैसे नजर आते हैं। स्वाती के साथ सूर्य का संगम आश्विन और कार्तिक के महीनों में होता है। हर वर्ष अक्टूबर माह के लगभग 20 वीं दिनांक से लेकर नवम्बर के पहले सप्ताह तक स्वाती और सूर्य के संगम दिन होते हैं। उन दिनों में हवा के प्रकोप के बारे में सभी जानते हैं। उस समय की हवा को देखने पर लगता है वायु का महाबल संज्ञा सार्थक है। सन् 1864 एक नवम्बर को मचिलीपट्टणम् में आया समुद्रीतूफान ऐतिहासिक है। उस जल प्रलय में एक ही रात में तीस हजार से भी ज्यादा लोग मरे थे। वे दिन स्वाती और सूर्य के संगम दिन ही थे।

वेद पुराण आदि में स्वाती और वायु का अन्तराभाव बताया गया है। वायु हमेशा विष्णु को ही आश्रित करके रहती है। रामायण में हनुमान, महाभारत में भीम स्वाती नक्षत्र के ही प्रतिरूप हैं।

ज्येष्ठा और इन्द्र

मृगशिरा और सूर्य के संगम दिनों में मृगशिरा नक्षत्र सूर्य के साथ उदित होकर सूर्य के साथ ही अस्त होगा। उन दिनों में सूर्यास्त होते ही पूर्व में ज्येष्ठा नक्षत्र उदित होता है। जिस दिन से मृगशिरा अस्त होता है उसी दिन से पहले बारिश भी प्रारम्भ होती है।

इसी भौगोलिक स्थिति को आधार बनाकर इन्द्र और वृत्रासुर की कथा बनायी गयी है। वृत्रासुर का शिर मायामृग का है। वह खगोल के दिविजगंगाप्रवाह में रुकावट पैदा करके भूलोक में बारिश को रोकने का प्रयास करता है। वृत्रासुर का प्रतिस्पर्धी है इन्द्र। इन्द्राधिष्ठान ज्येष्ठा नक्षत्र जब पूर्व में उदित होता है तो पश्चिम में वृत्रासुर रूपी मृगशिरा का अस्त होता है। अस्त होने की बात स्वाभाविक है कि कुछ दिन तक मृगशिरा अदृश्य हो जाता है। इसी को अलंकारिक अपनी भाषा में वर्णित करते हैं। उनके अनुसार वृत्र का प्रतिस्पर्धी इन्द्र वृत्र का संहार करके बारिश को सही समय में होने का कारक बना। इससे कर्षक लोग तथा ताप के उपशमन के कारण अन्य लोग भी उपशमन को प्राप्त करते हैं।

मूल और आषाढा तथा कामदेव (मन्मथ)

ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा के दिन पूर्व में ज्येष्ठा नक्षत्र उदित होना प्रारम्भ करता है। उत्तर हिन्दुस्तान में पूर्णिमा से ही महीने का प्रारम्भ होता है। ज्येष्ठा के बाद क्रम में मूल पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा नक्षत्रों का उदय होता है। इन ताराओं का समूह ही धनू राशि कहलाती है। धनू को ही मन्मथ कहा जाता है। मन्मथ ताप के कारक इसी मन्मथ को वेदों में कृशानु कहा गया है। ऋग्वेद (1-155-2, 4-27-3, 6-3-5) में वर्णन प्राप्त होता है कि कामदेव (मन्मथ) लोगों के ऊपर तापरूपी बाणों का प्रयोग करता है।

यहीं वैदिक विवरण महाकवि कालिदास के मेघसन्देश (मेघदूत महाकाव्य) में अच्छे तरीके से प्रस्तुत किया गया है। उस महाकाव्य में यक्ष का मेघसन्देश सबका परिचित है ही।

वृत्रासुर के संहार के बाद मृगशिरा का प्रवेश, मृगशिरा के प्रवेश से ही वर्षा का आगमन, वर्षा के आगमन के कारण ग्रीष्मताप से उपशमन होता है। गर्मी से उपशमन प्राप्त होने के कारण तथा वातारण में शीतलता के प्रवेश के कारण सहजता से ही स्त्री और पुरुष के बीच कामुकता का भाव उत्पन्न होता है। इन दिनों में शाम होते ही पूर्व में धनू राशि के उत्तराषाढा नक्षत्र का उदय होता है। इसी कारण से श्रृंगार भाव के उत्पत्ति का कारक धनूराशि (धनुर्धारी) माना गया है।

वर्षा की रात मेंढक जो आवाज करते हैं उसे जीवशास्त्रवेत्ता स्त्री और पुरुष के आकर्षण का प्रतीक मानते हैं। “आब्रह्मकीटान्तमिदं निबद्धम्। स्त्रीपुं प्रयोगेनजगत्समस्तम्” प्राकृतिक सत्य आषाढ के महीने में देखने को मिलता है।

नक्षत्र का प्रथम दर्शन जिस दिन होता है उस दिन उस नक्षत्र के अधिष्ठाता की पूजा बताई गई है। भागवत के “प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः” वचन के अनुरूप इसे समझा जा सकता है। नक्षत्र के अस्त होने के बाद छः माह के बाद उसका उदय पूर्व में होता है। इतने बड़े अन्तराल के बाद आने के कारण उत्सव के रूप में अधिष्ठान देवता की पूजा होती है। यह एक पक्ष है।

दूसरा पक्ष है कि प्रकृति में मानव जीवन के लिये उपयुक्त प्रत्येक तत्त्व को भगवान का नाम दिया गया। किन्तु इतने भगवानों की कैसे पूजा कर सकते हैं। अतः इन भगवानों को नक्षत्रों के अधिष्ठाता प्रकल्पित किया गया है। उनका स्मरण नक्षत्र के उदित होने के आधार पर करते हैं।

नक्षत्रों का दर्शन , उदय आदि निश्चित है तथा खगोल में वेधयोग्य है। अतः उनसे भगवान को जोड़ने पर भगवान का भी स्मरण निश्चित अन्तराल में होता ही है। प्रकृति के अन्तर्गत जिस तत्त्व को भगवान का नाम लेकर हम सम्मान आदि करना चाहते हैं उससे अवश्य ही प्रकृति प्रफुल्लित तथा समतुल्य रहती है। प्रफुल्लित प्रकृति हमेशा सानुकूल वातावरण का ही निर्माण करती है।

नक्षत्राधिदेवता की पूजा

प्रत्येक नक्षत्र का किसी न किसी देवता से सम्बन्ध है। वह नक्षत्र ही वह देवता है तथा वह देवता ही वह नक्षत्र है। यहाँ नक्षत्र एवं देवता दोनों में अद्वैत भाव सिद्ध हो गया है। देवताओं के लिये अहोरात्र अर्थात् दिन और रात्रि पार्श्व कहा गया है तथा नक्षत्र उनका स्वरूप। इसी बात को “अहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपम्” कहकर श्रुति प्रमाणित करती है।

नक्षत्र के सूर्योदय से पहले तथा सूर्यास्त के पश्चात् पूर्व क्षितिज में पहली बार (अस्त होने के बाद) उदय होने पर उससे सम्बन्धित देवता की पूजा की जाती है। भारतीय परम्परा में जितने भी पर्व व त्योहार मनाये जाते हैं प्रायः उन सभी का आधार यही सिद्धान्त है। इतना ही नहीं, आसमान में नक्षत्र का

आकार व उसके आसपास के नक्षत्रों के आकार आदि के आधार पर नक्षत्राधिदेवता का वाहन, ध्वज, उनका महत्कार्य, उनके द्वारा मारे गये राक्षस, तथा पौराणिक नायक आदि वैदिक तथा पौराणिक गाथायें निर्णीत होते हैं।

प्रतिस्पर्धी

स्पर्धा में जो जिसका सामना करता है वह प्रतिस्पर्धी कहलाता है। एक रूप से देखे तो इसे विरोधी व शत्रु कह सकते हैं। यहाँ पर आमने सामने के भाव में लिया जा सकता है। यही आमने सामने का भाव तथा दोनों की स्थिति में वैपरीत्य इस प्रतिस्पर्धी शब्द का प्रयोग करने में मुख्य कारक बना है। आचार्य (मूललेखक) ने इस प्रतिस्पर्धी भाव को बहुत्र प्रयोग में लिया है तथा यही भाव मुख्यरूप से वैदिक साहित्य को खगोल से जोड़ने में मुख्य भूमिका बनता है।

खगोल गोलाकार है। पूर्वक्षितिज तथा पश्चिम क्षितिज का अन्तर 180 अंश का होता है। अर्थात् एक वृत्त के आमने सामने के बिन्दु। इसीलिये पूर्व में किसी नक्षत्र के उदित होने पर ठीक उसी समय में पश्चिम क्षितिज में जो नक्षत्र अस्त होता है उसे उस नक्षत्र का प्रतिस्पर्धी कहा गया है। यह महज एक गणितीय व खगोलीय दृष्टिषय है। किन्तु सत्य एवं नित्य आकाशीय घटना को शाश्वत रूप में प्रचलन में लाने तथा तद्वारा प्रकृति और प्राणिकोटि के मध्य में सामंजस्य बनाये रखने की वैदिक ऋषियों की यह एक वैज्ञानिक पहल है। इस रेखागणितीय प्रतिस्पर्धिसूत्र से उत्पन्न कुछ प्रतिस्पर्धीगाथायें इस प्रकार हैं —

1. इन्द्र और वृत्र
2. महेश्वर और कामदेव
3. राम और रावण
4. कर्ण और अर्जुन
5. गरुड और सर्प आदि।

(इस प्रकार के कथन से आम जनता में आक्रोश हो सकता है। राम और रावण, कर्ण और अर्जुन आदि की गाथायें केवल प्रतिस्पर्धी नक्षत्रों से उत्पन्न हैं इस प्रकार का अर्थ यदि लिया जाय तो महान अनर्थ का कारण बन सकता है। वाक्यपठन मात्र से अर्थ ग्रहण न करके आगे की पंक्तियों को भी ध्यान से पढ़ने पर आचार्य का मन्तव्य समझ में आता है।

यह स्थिति केवल प्रतिस्पर्धी नक्षत्रों के विषय में ही नहीं बल्कि ग्रन्थ के अनेक सन्दर्भों में रुढार्थ और गूढार्थ में जो अन्तर होता है उस अन्तर को भी मन में रखना आवश्यक है। अन्यथा ग्रन्थकर्ता का मूल उद्देश्य धूमिल हो सकता है। तथा आचार्य का यह दृष्टिकोण वैदिक साहित्य में नये शोध के अवसरों को दर्शाता है।

शोधकर्ता के मन में सत्यान्वेषण के अतिरिक्त अन्य भाव नहीं होना चाहिये। परम्परा, जाति, कुल आदि से सम्बन्धित भाव शोध को निष्पक्ष नहीं बना सकता है। शोध के समय यदि अपने ही मत का खण्डन करके चिन्तन करने की आवश्यकता पड़ती है तो अवश्य ही उस प्रकार करना

चाहिये। पूर्वाग्रह व दुराग्रह से किये जाने वाला शोध फलदायी नहीं हो सकता है।

प्रतिस्पर्धी गाथाओं की सूची में आचार्य यद्यपि अर्जुन - कर्ण तथा राम-रावण का उद्धरण किये हैं तथापि ग्रन्थ में इनकी व्याख्या प्राप्त नहीं है।

खगोल के नाटक के अनुरूप ही धरती पर भी नाटक होता है। यह एक परम्परागत उक्ति है जो हमेशा अनुभव में सत्य स्थापित होती है।

“As above so below. The Drama of the Earth runs parallel to the Drama of the Sky”

(इस वाक्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिस्पर्धी गाथायें जो आकाश में देखने को मिलती हैं वे पृथ्वी पर घटित होती हैं। अर्थात् पृथ्वी का दर्पण मात्र आकाश है। अथवा आकाश का दर्पण मात्र पृथिवी है।)

1. मायामृग का शिर वाला वृत्रासुर ज्येष्ठा के उदय के कारण अस्त होता है। अतः माना गया है कि वृत्रासुर का वध इन्द्र के द्वारा हुआ है। इस का वर्णन पूर्व में हो चुका है। पश्चिम में भी इसी प्रकार की एक गाथा प्रचलन में है। मृगशिरा को एक योद्धा के रूप में पश्चिमी लोग वर्णित करते हैं तथा इसे ओरैयान कहते हैं। यह योद्धा एक बिच्छू के काटने के कारण मर जाता है। मृगशिरा के सामने का नक्षत्र ज्येष्ठा है। यह ज्येष्ठा नक्षत्र वृश्चिक राशि में स्थित है। वृश्चिक राशि के उदित होते ही मृगशिरा का अस्त होता है। अतः पश्चिमी गाथा भी इसी खगोलीय दृग्विषय को प्रगट करती है।

2. आर्द्रा नक्षत्र का अधिपति रुद्र है। इसके उदित होते ही धनू राशि अस्त होती है। यह धनू ही पौराणिक कामदेव है। इसी कामदेव को मकरध्वज भी कहते हैं। धनू राशि के ऊपर मकर राशि है और यही कारण है कि कामदेव को मकरकेतन कहा जाता है। कामदेव पर क्रुद्ध होने के कारण रुद्र लाल वर्ण का हो गया ऐसे कहते हैं। वस्तुतः आर्द्रा नक्षत्र कुंकुमारुण वर्ण का होता है।

“संवर्ताग्नि तटित्प्रदीप्तकनकप्रस्पर्धितेजोमयम्”

इस श्लोक में आर्द्रा नक्षत्र का वर्णन सुन्दर रूप से किया गया है। वस्तुतः वर्णन रुद्र का है किन्तु रुद्र के आर्द्रा का आधिपत्य होने के कारण यह वर्णन आर्द्रा के लिये भी स्वीकारते हैं।

इस सन्दर्भ में आज के वैज्ञानिक आर्द्रा के बारे में क्या कहना चाहते हैं यह भी जानना आवश्यक है। 1948 वर्ष के Whitaker's almanac के 164 वें पृष्ठ में आर्द्रा का व्यास इक्कीस करोड़ साठ लाख मील कहा गया है। गणित की दृष्टि से देखने पर यह आर्द्रा नक्षत्र सूर्य से एक करोड़ छप्पन लाख उनतीस हजार एक सौ आठ गुणा बड़ा है यह पता चलता है। सूर्य तो पृथ्वी से तेरह लाख गुणा बड़ा है। अर्थात् आर्द्रा नक्षत्र पृथ्वी से बीस लाख करोड़ गुणा से भी ज्यादा बड़ा है। आकार में ही महेश्वर कितना बड़ा है।

सन् 1943 की जनवरी माह की पत्रिका astrological magazine के 25-28 पृष्ठों में आर्द्रा की कुछ विशेषतायें वर्णित हैं। अमेरिका के विल्सन पहाड़ों के ऊपर प्रतिष्ठित टेलीस्कोप से आर्द्रा का दर्शन करने वाले गवेषक ने उसका इस प्रकार वर्णन किया है – “ लपटें। आग की लपटें। महोन्नत

लपटें। कितने करोड सूर्य गोल इस आकार में जुड़े होंगे। मैं अपनी आंखों पर विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ। इस विजृम्भित आग का वर्णन असम्भव है। इसका कोई अन्त नहीं। सृष्ट्याद्यनन्तकाल यह गोल ऐसे ही रहेगा।“

(इस वर्णन में कुछ विशेषतायें भी हैं। गवेषक का कथन है कि अनन्तकाल यह नक्षत्र रहेगा। इस कथन का तालमेल पुनर्जन्मसिद्धान्त से किया जा सकता है। एक तरह से पुनर्जन्म का तालमेल सूर्य से अथवा द्रव्य एवं ऊर्जा से करने का प्रयास सानुकूल ही माना जा सकता है।

सूर्य में प्रत्येक सेकंड काल में दो लाख टन पदार्थ का विस्फोट होकर ऊर्जा उत्पन्न होती है। अर्थात् सूर्य में दो लाख टन का द्रव्य विस्फोट से ऊर्जा का रूप धारण कर लेता है। इस क्रम में द्रव्य की समाप्ति होने पर सूर्य भी लाखों करोड़ों वर्षों के बाद समाप्त हो जायेगा। पुनः ऊर्जा शीतलता को प्राप्त कर द्रव्य का रूप धारण कर लेता है। अर्थात् पुनः सूर्य की उत्पत्ति हो जाती है। और यही समय सृष्टि से लय व प्रलय तक का माना जा सकता है।

किन्तु आकार में सूर्य से कई लाख करोड गुणा बड़ा आर्द्रा नक्षत्र का द्रव्य ऊर्जा में पूर्ण रूप में परिवर्तित होने के लिये अत्यन्ताधिक काल अपेक्षित है जो अवश्य ही मानव की कल्पना से परे है।

अतः परिशोधक का यह वचन सार्थक ही है। प्रतिस्पर्धी नक्षत्रों के समय सन्दर्भानुसार आचार्य जी का आर्द्रा से सम्बन्धित यह वर्णन अनेक प्रकार के पहलुओं का तथा आयामों का मार्ग सुगम कर सकता है।)

देवताओं का वाहन और ध्वज

प्रत्येक भगवान का एक वाहन तथा ध्वज निश्चित है। इनका निर्णय यादृच्छिक (इत्तिफाक) नहीं बल्कि आकाशीय स्थिति ही है।

(हर स्थान में आकाशीय स्थान कहने पर एक शक अवश्य उत्पन्न होता है। इस प्रकार का वर्णन वैदिक ऋषियों की सत्ता तथा बौद्धिक एवं आधिदैविक सत्ता पर भी साधारणतः प्रश्नचिन्ह लगाता है। किन्तु गम्भीरता के साथ यहाँ पर ध्यातव्य विषय अनेक हैं।

ग्रन्थकर्ता का यह वर्णन वैदिक वाङ्मय का एक आयाम मात्र है। पूर्व में ही स्पष्ट कर दिया गया है कि वैदिक वाङ्मय का वर्णन कितने भी परिप्रेक्ष्यों में किया जाय तथापि अस्पष्ट आयाम व परिप्रेक्ष्य अवश्य हमारी प्रतीक्षा करता ही रहता है। इसको भारत के ही नहीं अपितु भारतेतर विद्वान भी अनेक सन्दर्भों में स्पष्ट कर चुके हैं।)

ग्रह जिस चक्र में चलते हुये दर्शन देते हैं उसी मार्ग का नाम क्रान्तिवृत्त है। उसी क्रान्तिवृत्त के आस पास में, क्रान्तिवृत्तीय स्थानों के द्योतक के रूप में

सत्ताईस तारासमूह हैं जिन्हें आर्ष नक्षत्र के नाम से व्यवहार करते हैं। इन नक्षत्रों की पहचान उनके योगताराओं से होती है। इन्हीं नक्षत्रों को अश्विनी भरणी आदि नामों से व्यवहार करते हैं। एक एक नक्षत्र में चार चरण तथा नक्षत्रों के नौ चरणों से एक एक राशि इत्यादि बातों को सभी जानते ही हैं।

कृत्तिका नक्षत्र का देवता अग्नि है। कृत्तिका के तीन चरण वृषराशि में है। पूर्वादि क्रम में स्थित राशियों में वृष के नीचे की राशि मेष है। अतः अग्नि का वाहन मेष है। इसीलिये मण्डप में अग्नि का आवाहन करते समय मेषारूढ संज्ञा का व्यवहार देखा जाता है। इसी तरह मिथुन युगल का संज्ञक है। वह युगल पार्वती परमेश्वर के अलावा और कुछ नहीं। मिथुन राशि के नीचे की राशि वृष है अतः शिवजी का वाहन नन्दी है। यह स्थिति शाम के समय पश्चिमी क्षितिज पर दृश्य होती है। इसी तरह शिवजी के ध्वज में भी नन्दी ही है। यह स्थिति प्रातःकाल में पूर्वक्षितिज में नजर आती है।

इसी प्रकार कन्याराशि का वाहन सिंह है तथा ध्वज भी सिंह ही है। मकर राशि कामदेव (धनू राशि) का ध्वज , तथा वरुण (कुम्भराशि) का वाहन है।

चतुर्थ अध्याय

मेषादि राशियों का व्यवहार

दो प्रकार के मत विश्व में व्याप्त हैं। कुछ भारतीय विद्वानों सहित कुछ पाश्चात्य विद्वानों का मानना है कि भारतीयों को मेषादि राशियों का ज्ञान नहीं था तथा उन्होंने इस ज्ञान को मिस्र देश के विद्वानों से प्राप्त किया। दूसरे वर्ग का कहना है कि मेषादि राशियों का ज्ञान विश्व को भारतीय महर्षि ही दिये हैं।

कोलकत्ता शहर के उच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश सर विलियम जोन्स का कथन है कि मेषादि राशियों का ज्ञान भारतीयों की ही देन है। प्राचीन पञ्चाङ्ग तथा नक्षत्र नामक ग्रन्थ का कर्ता प्लन्केट के अनुसार संस्कृत वाङ्मय का सही दृष्टि से शोध अब तक नहीं हो पाया है। वैदिक शास्त्रों में राशियों से सम्बन्धित विचारों से विश्व को परिचय (रूबरू) कराने का दायित्व संस्कृतज्ञों का ही है। इस सन्दर्भ में ध्यातव्य है कि प्लन्केट महोदय अपने ग्रन्थ में इस बात का दुःख जता चुके हैं कि संस्कृत ज्ञान न रहने के कारण वे प्राचीन भारतीय शास्त्रों में निबद्ध विषयों को समझने और जानने में नाकाम है तथा यही स्थिति प्रायः सभी वैदेशिक विद्वानों की है।

(वैदिक वाङ्मय में वैदेशिक गवेषकों की संख्या के सामने भारतीय गवेषकों की संख्या न गण्य है। अतः अभी भी अपेक्षा (उम्मीद) की जा सकती है कि सही मायने में शोध होने पर आज भी अनेक नये तथ्य दुनिया के सामने आ सकते हैं।)

मिस्र वासियों को ग्यारह राशियों का ही ज्ञान था। इनको तुलाराशि के बारे में जानकारी नहीं थी। इस बात को मोंडर नामक लेखक ने अपने astronomy without a telescope नामक ग्रन्थ में सहेतुक प्रस्तुत किया है।

मेषराशि

कृत्तिका नक्षत्र का देवता अग्नि है। तथा वृषराशिस्थ कृत्तिका रूपी अग्नि का वाहन मेष है। इसी लिये वैदिक वाङ्मय में अग्नि से सम्बन्धित वर्णनों में मेषारूढ शब्द अनेक स्थानों में प्राप्त होता है। इस आकाशीय स्थिति के अभाव में इस प्रकार की कल्पना सम्भव नहीं है। तथा ऋग्वेद के 1-51-1, 1-52-2 आदि स्थानों में मेष की प्रशंसा प्राप्त होती है।

(स्वभावतः मेष ही नहीं कोई भी प्राणि अग्नि का वाहन नहीं हो सकता है। तथापि वैदिक वाङ्मय में अग्नि को मेषारूढ बताया है। अतः अवश्य ही आकाशीय परिदृश्य का प्रतिबिम्ब है यह वर्णन)।

वृष

खगोलीय राशियों में वृष राशि रूपी बैल के चार सींग, तीन पैर, दो शिर है। अभी भी आकाश में दर्शन देने वाला स्वरूप यही है। ऋग्वेद के 4-58-3 में “ चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे .. वृषभो रोरवीति”

कहकर वृषभ का वर्णन किया है। इस मन्त्र का प्रयोग वैदिक प्रक्रिया में तथा कर्मकाण्ड में अग्नि के आवाहन के सन्दर्भ में किया जाता है। इसके अलावा अनेक सन्दर्भों में वृष राशि का वर्णन ऋग्वेद में पाया जाता है। “नस्मै तृणं नोदकमाभरन्त्युत्तरो धुरोवहति प्रदेविशत्”(10-102-10) । यह बैल घास नहीं खाता है। पानी नहीं पीता है। ध्रुव नक्षत्र को दर्शाता है। दिशाओं को विशद करता है।

“घास न खाकर, पानी न पीकर ध्रुवादि नक्षत्रों को दर्शाने वाला वृषभ आसमान में नहीं तो कहाँ रहेगा?”

“युवां रथं वृषभश्च शिशुमारश्चयुक्ता” (1-116-16)। अश्विनी देवताओं का वर्णन परक सूक्त में यह मन्त्र है। अश्विनीकुमार वृषभ तथा शिशुमार से युक्त रथ में जाने का वर्णन है। अश्विनी नक्षत्र के अधिष्ठाता है अश्विनी देवता। उनके सामने वृषराशि है। उसी के पास शिशुमार नामक नक्षत्रसमूह है। इसी शिशुमार समूह को पाश्चात्य लोग सीटस समूह कहते हैं। तिमिंगल को सीटस कहा जाता है। समुखस्थ वृष तथा उसी स्थान में स्थित तिमिंगल सदृश जानवर दृश्य होने के कारण अश्विनी देवताओं के रथ का वर्णन वैदिक ऋषियों के द्वारा करना स्वाभाविक ही है।

मिथुन

पुनर्वसु का आकार धनुष के बराबर है। इसके उत्तरी भाग में दो तारों की जोड़ी है। ये दोनों अत्यन्त प्रकाशमान हैं। पश्चिम में इन तारों को केस्टर और पोलक्स कहते हैं। प्राचीन वाङ्मय में इस जोड़ी को भी अश्विनी ही

माना गया है। ऋग्वेद में अश्विनी का त्रिषधस्थ नाम से अनेक स्थानों में वर्णन है।

1. पहला है मेषराशि में अश्विनी नामक तारायुग्म
2. दूसरा पुनर्वसु राशिस्थ प्रकाशमान तारायुग्म
3. तीसरा चित्रा नक्षत्र के नीचे दक्षिण भाग में स्थित अश्वतर मण्डल का तारा युग्म

अश्वतर मण्डल के तारायुग्म को पश्चिमी लोग आल्फा, बीटा सेन्टारस नाम से पुकारते हैं। सेन्टारस शब्द को ध्यान से देखने पर समझ में आता है कि वह अश्वतर शब्द का ही विकृत रूप है। दूसरे स्थान के अश्विनी को मिथुन कहते हैं। पुनर्वसु के बाद के पुष्यमी मेघ के दोनों ओर जो दो तारे हैं उनकी गर्दभसंज्ञा है। दूसरे स्थान के अश्विनी के वाहन के रूप में इन गर्दभों का वर्णन अनेक स्थानों में प्राप्त होता है। जैसे –

1. कदा योगो वाजिनो रासभस्य नासत्या – 1-34-9
2. युंजाथागुं रासभं य मस्मिन् यामो – तै.सं-4-1-2
3. सगर्दभरथेनाश्विना – ऐ.ब्रा. 4-2-9
4. तामश्विना रासभाश्वाहवं मे – तै आ. 1-1-10-1

चिचिंडा के फूल के सदृश वाले पुष्य नक्षत्र के दोनों ओर के ताराओं को पश्चिमी एस्सेली कहते हैं जिसका अर्थ है गधों का जोड़ा।

कालक्रम में अश्विनी का पुनर्वसु से सम्बन्ध कमजोर होता गया। ऋग्वेद के 1-158 सूक्त का देवता अश्विनी है, मन्त्रद्रष्टा दीर्घतम। उसका पहला मन्त्र है “वसू रुद्रा, पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ” (1-158-1) यहाँ अश्विनी को रुद्र नाम से सम्बोधित किया गया है। कालक्रम में ये तारों

का जोड़ा रुद्र और रुद्रपत्नी अर्थात् शिव और पार्वती का जोड़ा (मिथुन) माना गया। इस प्रकरण में कुमार सम्भव के कुछ पंक्तियाँ महत्वपूर्ण हैं।

1. विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया... कु.सं.5-70

2. स्वरूपमास्थाय च तं कृतस्मितः

समाललम्बे वृषराजकेतनः॥ कु.सं 5-84

आश्चर्य की एक बात और है। मिश्रवासियों से 1500 वर्ष पहले ज्योतिर्विज्ञान में सुप्रतिष्ठित आकेडियन् समूह के लोग अपने पंचांगों में तीसरे मास को शिवम् नाम से व्यवहार करते थे। हाल ही के शोध में यह विषय सामने आया। हमारे मासों में भी तीसरा मिथुन मास शिव पार्वती के मिथुनरूपी पुनर्वसूस्थ तारायुक्त मिथुनराशि का ही है। और अविनाभाव दाम्पत्य सम्बन्ध से प्रफुल्लित मिथुनराशि का स्वरूप व भाव मिश्रवासियों में नहीं है। अर्थात् अविनाभावसम्बन्ध रखने वाला दाम्पत्यजीवन का परिचय मिश्र वासियों को नहीं है। उन लोगों से भारतीय ऋषियों का ज्ञान ग्रहण इस प्रकरण से ही निर्हेतुक सिद्ध होता है।

कर्कराशि

मिश्र देश की गाथाओं में कर्कराशि बीटल नामक कीड़े के रूप में अभिवर्णित है। बीटल कीड़े को यहाँ पर गोबर में पाये जाने वाले कीड़ों की श्रेणी में गिना जा सकता है। वहाँ के पौराणिक कथा के अनुसार हेरेक्युलस नामक योद्धा को इस कीड़ा ने बहुत तंग किया था। किन्तु ऋग्वेद में कर्क सदृश कोई नाम सामने नहीं आता है। किन्तु शम्बर नामक इन्द्र के शत्रु के

बारे में वर्णन प्राप्त होता है। शम्बर का वध इन्द्र के हाथों होता है। शम्बर कुलितर का पुत्र है।

वेद में कौलितर शब्द प्राप्त है। “उतदासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि अवाहन्निन्द्र शम्बरं” (ऋ.4-30-14). निघण्टु में शम्बर शब्द का अर्थ मछली जैसा जानवर बताया गया है। इसी कुलितर शब्द में कालान्तर में त वर्ण का लोप होकर कुलीर शब्द उत्पन्न हुआ होगा। कुलीर का अर्थ कर्कट होता है।

महाभारत के एक सन्दर्भ से भी कर्क राशि का ज्ञान हो सकता है।

अर्जुनस्य इमे बाणा नेमे बाणाः शिखण्डिनः।

कृन्दन्ति मम गात्राणि माघमा सेगवा इव॥

यहाँ माघमा का अर्थ कर्क तथा सेगवा का अर्थ सन्तान से है। ज्योतिष की दृष्टि से इस श्लोक को देखने का प्रयास करते हैं। भीष्म अष्टवसु में से एक का अंशावतार है। धनिष्ठा नक्षत्र वसुदेवतात्मक है। धनिष्ठा जब पश्चिम में अस्त होने को होता है तब पूर्व क्षितिज में कर्क राशि का उदय होता है। इस श्लोक का गूढार्थ यही बताता है कि शरतत्प में लेटा भीष्म के अवसान में कर्क की तारायें पूर्व में उदित हो रही हैं। इस भाव से स्पष्ट होता है कि ऋग्वेद काल में कुलितर संज्ञा से कुलीर अर्थात् कर्क राशि व्यवहृत थी।

(यहाँ चर्चा महाभारत की करके कैसे वैदिक कालीन स्थिति को सिद्ध किया जा रहा है। यह प्रश्न साधारण रूप से किसी के भी मन में उत्पन्न हो सकता है। इस कारण से श्लोक को प्रस्तुत करते वक्त आचार्य कहते हैं पञ्चम वेद के रूप में प्रसिद्ध महाभारत का यह उद्धरण है। गूढ वैदिक भावों को साधारण जन के लिये प्रकट करने के लिये ही महाभारत आदि पुराणों की रचना व्यास जी ने की। यह विषय तो सर्वविदित हैं ही।)

सिंहराशि

देवताओं के प्रधान इन्द्र की स्तुति में अनेक ऋचायें व मन्त्र ऋग्वेद में प्राप्त हैं। इनके द्वारा किये गये अनेक अब्द्धत कार्यों का वर्णन वहाँ पर उपलब्ध है। उसमें एक है सिंह का संहार। उस वर्णन के अनुसार इन्द्र सिंह का वध अजा से करता है। दुर्बल अजा से सिंह का संहार कैसे ? “अध्रेण चित्तद्वेकं चकार सिंहां चित्येत्वेना जघाना” (ऋ.7-18-17) इस मन्त्र के अर्थ को अवगत करने से पहले कुछ अन्य विषयों को जानना आवश्यक होता है।

अज कहते हैं बकरी को। रेवती नक्षत्र के अधिष्ठाता पूषा का रथ खींचने वाली बकरी है। ध्यातव्य एक और अंश है। मकर राशि का व्यवहार पहले अज शब्द से करते थे। वेद में वर्णित यह अज विचित्र स्वरूप की है। इसका शिर बकरे का तथा पूंछ मछली की। इसे समुन्दरी बकरी कहते हैं पाश्चात्य लोग। वे इसे केप्रिकारन कहते हैं। केप्रिकारन का अर्थ होता है फिश गोट अर्थात् मत्स्यबकरी। धनूराशि के ऊपर होने के कारण तथा पूंछ मछली की होने के कारण ही अनेक स्थानों में कामदेव मीनकेतन तथा झषकेतन कहा गया है। यह सिंहराशि का लगभग प्रतिस्पर्धी ही है। इसके उदित होने के कुछ देर में ही सिंह राशि अस्त होती है। अतः वशिष्ठ महर्षि ने उस वैदिक मन्त्र में अज से सिंह का वध करने का वर्णन प्रस्तुत किया है।

“दूरात्सिंहस्य स्तनधा उदीरते यत्पर्जन्यः वृणुते वर्ष्य नभः”

(ऋ. 5-83-3)

पर्जन्य मेघ का अधिष्ठाता है। पर्जन्य जब मेघों से आकाश को आच्छादित कर लेते हैं तब दूर से सिंह गर्जन करता है। वर्षाऋतु के प्रारम्भ में जब सूर्य मघा में प्रवेश करने को होते हैं उस स्थिति में सिंह राशि पश्चिम में अस्त होने वाली होती है। इसी स्थिति को वृष्टि के प्रारम्भ काल में दूर का सिंह गर्जन करता है करके वैदिक ऋषि उत्प्रेक्षा में वर्णन किये हैं।

कन्याराशि

कन्याराशि की प्रशंसा ऋग्वेद में स्थान स्थान में है। कन्याराशि के लिये ऋग्वेद में प्रदत्त अनेक संज्ञाओं में अरमती संज्ञा भी एक है। “अनोमहीमरमतिं सजोषाग्नां देवीं नमसा रातहव्यां मधोर्मदाय बृहतीमृतज्ञा माग्नेवह पथिभिर्देवयानैः” (ऋ.5-43-6) हे अग्निदेव। हम पर अनुग्रह तथा सानुकूल होकर हमारे विनितियों तथा समर्पित भेंटों को स्वीकार कर विभ्राजित मूर्ति अरमती महादेवी को हमारे ऊपर अनुकम्पा के लिये देवयानी मार्ग में ले आयिये।

दूसरी संज्ञा है रोदसी। रोदसी सात मरुतों की पत्नी है। ये मरुत जिस स्थान में स्वाती नक्षत्र है उसी स्थान के हैं। उनके पास ही कन्या रोदसी है। इसी कारण कन्या रोदसी सातों मरुतों की पत्नी के रूप में वर्णित है। “परा शुभ्राऽयासोयव्या साधारण्येव मरुतीमिमिक्षुः” (ऋ.1-167-4) दूर में तेज से प्रकाशित मरुत अपने सामूहिक पत्नी इस युवती को गम्भीर (गाढ) ग्रहण किये हुये हैं।

1. मिम्यक्षयेषु रोदसीनु देव (ऋ – 6-50-4,5) अर्थ है रोदसी देवी जिनको गाढालिंगन की हुई हे वे मरुत्

2. अधस्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सुतस्थै नरोकः (ऋ – 6-66-6)
अर्थ – दिव्य तथा स्वतस्सिद्ध तेज से प्रकाशित जैसे, आवरण से बाधित न होकर सम्पूर्ण कान्ति से प्रज्वलित जैसे, मरुतों के मध्य में स्वाभाविक प्रभा से प्रकाशित है रोदसी कन्या।
3. परावरास एत नमर्यासोभद्र जानयः अग्नि तपो यथासध (ऋ – 6-61-4)। अर्थ – मनोहारी अपनी पत्नी के साथ दूर जाकर अग्निवेदी के पास शैत्य को दूर कीजिये। अच्छे दुल्हें! हे मरुत्! हे वीर! जाओ।

यहाँ बताया गया अग्निवेदी का ज्योतिष की दृष्टि में विशेषार्थ है। चित्रा और स्वाती के बाद का नक्षत्र विशाखा है। विशाखा का देवता इन्द्राग्नी है। कुलाल चक्र जैसे विशाखा नक्षत्र में पांच तारे हैं। स्वरूप में वर्तुल वेदी जैसे तथा अधि देवता इन्द्राग्नी होने के कारण शैत्य बाधा से पीडित नव वर मरुतों को रोदसी वधू के साथ जाकर आग सेकने के लिये प्रेरित करने का भाव है मन्त्रद्रष्टा का।

इस वर्णन में एक और विशेषता है। कन्याराशि में पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी के भी लक्षण दिखते हैं। द्रौपदी अयोनिजा और अग्निकुण्डसमुद्भवा है। विशाखा नक्षत्र अग्निकुण्ड तथा उसकी ऊपर की राशि कन्या होने के कारण कन्या (द्रौपदी) को अग्निकुण्डसमुद्भवा तथा खगोलचारी होने के कारण अयोनिजा कहा जा सकता है। आसमान में घूमने वाले मत्स्य का छेदन करने वाले को द्रौपदी को देने का निर्णय स्वयंवर में करते हैं राजा द्रुपद। यह मत्स्य यन्त्र है राशियों में अन्तिम मीनराशि। मीनराशि का प्रतिस्पर्धी है उत्तराफल्गुनी नक्षत्र। उत्तराफल्गुनी नक्षत्र का ऋग्वैदिक नाम

अर्जुन ही है। फाल्गुन माह के अष्टमी तिथि तथा रोहिणी नक्षत्र में द्रौपदी का स्वयंवर कार्यक्रम होता है। उस समय सूर्यास्त के समय जब पूरब में उत्तराफल्गुनी नक्षत्र का उदय होता है तब पश्चिम में मीनराशि अस्त होती है। मीनराशि के अस्त होते ही पूर्व में उत्तराफल्गुनी नाम से प्रसिद्ध अर्जुन के बाद की कन्याराशि उदित होती है। इससे यह अर्थ साधारण रूप में ग्रहण किया जा सकता है कि अर्जुन के द्वारा मीन का छेदन करने के बाद कन्या अर्जुन को वरमाला पहनाती है।

किन्तु द्रौपदी केवल अर्जुन की ही नहीं बल्कि पांचों पाण्डवों की पत्नी कही गयी है। इसकी भी खगोलीय स्थिति इस प्रकार है। कन्या राशि के चारों ओर के नक्षत्रों का परिशीलन करते हैं।

1. मघा नक्षत्र का अधिदेवता पितर हैं तथा पितरों का प्रभु यम है। यम का ही अंश धर्मराज व युधिष्ठिर हैं।
2. पूर्वाफल्गुनी। इसे अर्जुनी नक्षत्र कहते हैं। अर्जुन फल्गुनी नक्षत्रसंजात हैं। अतः फल्गुन है।
3. स्वाती। अधिष्ठान देवता वायु। वायु का पुत्र ही भीमसेन है।
4. 4 और 5 है अश्वतर मण्डल का तारायुग्म। पूर्व में ही वर्णन किया गया है कि तीन स्थानों में स्थिति अश्विनी देवताओं का यह तीसरा स्थान है। इन अश्विनी देवताओं के अंशरूपी जन्मलेते हैं नकुल और सहदेव।

इन पांचों के बीच में नदी सदृश कन्या द्रौपदी पाण्डवों की धर्मपत्नी है।

(वर्णन सहेतुक है किन्तु परम्परा को बाधित न करने की दृष्टि से गम्भीर शोध की आवश्यकता है। पूर्व वर्णित “जैसे आकाश में वैसे पृथ्वी पर” उक्ति का सहेतुक पुष्टि इस प्रसंग को भी सिद्ध कर सकता है)

तुलाराशि

मिस्र वासियों को तुला का ज्ञान नहीं है। वे इसे वृश्चिक का ही भाग मानते थे। इस का कारण इस प्रकार है। हेरेक्युलस नामक योद्धा की मृत्यु एक बिच्छू के कारण हुई। इसका विवरण पहले भी दिया जा चुका है। आकार में वह वृश्चिक बहुत बड़ा है। इस पौराणिक गाथा में उद्धृत महान वृश्चिक का आकार वे तुला और वृश्चिक के संयोग से स्वीकारते हैं। पाश्चात्य जगत में पहली बार तुला का प्रयोग मिस्र के वारिस रोमन ज्योतिर्विद् वर्जिल महाकवि के द्वारा किया गया। इन्होंने इसे लिब्रा नामसे पाश्चात्य वाङ्मय को परिचय कराया।

मिस्र सभ्यता से 1500 वर्ष पूर्व के आकेडियन् देशवासी सूर्य के तुलाराशि में रहने पर आने वाले मास को तुल्क नाम से व्यवहार करते थे। आकेडियनों की पवित्राग्नि वेदी इसी राशि में है।

वैदिक ऋषियों को इस राशि का स्पष्ट ज्ञान है। सूर्य के तुला राशि में रहने पर उस मास को तुलामास कहते हैं। वर्षाकाल तथा वर्षान्तसूचक शरत्काल का मध्यमास है तुलामास। विशाखा नक्षत्र के साथ मेघ समाप्त हो जाते हैं। तुला मास में न उष्णता की बाधा रहती है न शीतलता की। तथा

इसी राशि में क्रान्तिचक्र दक्षिण की ओर झुकता है। वि-शाखा अर्थात् शाखापरिवर्तन करके दक्षिणपथ पर क्रान्ति वृत्त की जाने की व्युत्पत्ति बेन्टली महोदय के द्वारा की गई।

इसी विशाखा प्रान्त में क्रान्तिचक्र दो समभागों में विभक्त हो रहा है। तुला समत्व का भी सूचक है। तुला मास में दिन और रात्रि का परिमाण, शीत और उष्णता, वर्षव्याप्ति, खगोल के उत्तर और दक्षिण दिशा समत्वभाव में रहते हैं। समत्वभाव को दर्शाने वाले मन्त्र भी वैदिक साहित्य में प्राप्त होते हैं।

“ भरतामपयद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मोघते किंचनाममत्” (ऋ.10-59-10)। जिन अकार्यकरणदोषों के लिये पापी लज्जा से शिर झुकाते हैं, असमशील जो पक्षपातदोष प्राणियों को पीडित कर रहे हैं उस प्रकार के पापसंचय को समाप्त करके आकाश और पृथ्वी का प्रक्षालन कर दें। दुनिया में कोई भी प्राणी दुःखी न रहे।

राजा शिबि इस मन्त्रार्थ के बराबर के कारुणिक स्वरूप का धारण करते हैं। तुलाराशी का सौम्यशीलता शिबि, गौतम बुद्ध, महात्मा गान्धी, क्रिस्त आदि में देखने को मिलता है।

राजा शिबि

शिबि उशिनी राशि का पुत्र है। इन्द्र और अग्नि दोनों राजा शिबि की परीक्षा लेना चाहते हैं। अग्नि कबूतर और इन्द्र गिद्ध का रूप धारण करते हैं। गिद्ध के द्वारा पीछा करने पर कबूतर राजा शिबि को बचाने के लिये कहता है। यहाँ शिबि और गिद्ध के बीच में संवाद चलता है। शिबि किसी भी

हालात में कबूतर को देने से मना कर देता है। कबूतर के बदले उसके बराबर का अपना शरीर का मांस देने का प्रस्ताव करता है राजा शिबि। तुला के एक ओर कबूतर रखकर राजा शिबि दूसरी ओर शरीर के टुकड़ों को डालना प्रारम्भ करता है। लगातार मांस डालते रहने पर भी कबूतर के बराबर का वजन न होने पर राजा शिबि स्वयं तुला में बैठ जाता है। राजा की इस स्थिति से सन्तुष्ट इन्द्र और अग्नि अपने निजरूप का धारण कर लेते हैं।

राजा शिबि की इसी कथा को आकाश में देखने का प्रयास करते हैं। विशाखा नक्षत्र का अधिपति इन्द्राग्नी है। कबूतर को बचाने के लिये राजा शिबि जिस तुला में बैठ जाता है वहीं द्वादशराशियों के बीच की तुलाराशि। (यह प्रकरण अधूरा सा लगता है। या तो ग्रन्थकर्ता ने इस प्रकरण को अधूरा छोड़ दिया या मुद्रक से कोई चूक होगयी। क्यों कि पूर्ण रूप से सम्बन्ध बैठाये बिना ही मूल ग्रन्थ में अन्य प्रसंग प्रारम्भ हो गया है।)

वृश्चिक राशि

वृश्चिक राशि की ताराओं में अग्रगण्य ज्योष्ठा नक्षत्र है जिसे पाश्चात्य विद्वान् एन्टारिस कहते हैं। एन्टारिस का अर्थ है अंगारक ग्रह जैसे लाल वर्ण से युक्त। इसे अल्फास्कार्पियो नाम से भी पश्चिमी लोग व्यवहार करते हैं।

“अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देहि उदजायन्ति विश्वे अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मामातरममुयापत्तिवेकः” (ऋ.4-18-1) अति प्राचीन इस मार्ग का अनुसरण करके ही देवता उदित हो सके हैं। इसका आश्रय प्राप्त करके ही कोई भी जन्म लेकर कीर्तिमान हो सकता है।

“नाहमतो निरयादुर्गहैतत्तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणिः” (ऋ. 4-18-2)। मार्ग संकुचित है। इस मार्ग में मैं नहीं जा सकता हूँ। किनारे से वक्रगति के सहारे निकलता हूँ।

“परायती मातरमन्वचष्ट न नानुगान्यनु नूगमानि” (ऋ. 4-18-3) कहकर मरती हुई माता की ओर आंख मोड़कर देखा।

इन मन्त्रों के अर्थ अवश्य ही सम्भ्रमित करते हैं। वृश्चिक राशि के गर्भ पार्श्व से ज्येष्ठा (इन्द्र) का जन्म हुआ। ऊपर दिये गये विवरण के अनुसार इन्द्र को मातृहन्ता होना चाहिये। वृश्चिक को तो कोई हानि नहीं पहुँची। तो मरणावस्था में स्थित वह माता कौन है? इन प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार है।

इन्द्र की माता का नाम अदिति है। अदिति पुनर्वसु नक्षत्र का अधिदेवता है। इन्द्ररूपी ज्येष्ठा का प्रतिस्पर्धी है मृगशिरा। इन्द्र (ज्येष्ठा) का जब उदय होता है तब मृगशिरा अस्त होता है तथा पुनर्वसु अस्त नहीं होता है। अस्त के समीप आया हुआ अदिति (पुनर्वसु) इन्द्र (ज्येष्ठा) के सामने आने के कारण मरणावस्था में स्थित माता की ओर देखने की बात कही गयी है।

धनुराशि

1. “यामर्त्याय प्रतिधीयमानमित् कृशानो रस्तु रसना मुरुष्यध” (ऋ.1-155-2)। धनुर्धारी कृशानु लक्ष्य करके मानवों पर प्रयोग करने वाला बाण।
2. “सृजद्यदस्म अवहक्षिपज्यां कृशानुरस्ता मनसा बुरण्यन्” (ऋ.4-27-3)। मन में उत्पन्न उद्वेग से धन्वि, कृशानु ज्या को चढ़ाकर लक्ष्य बनाकर उसको गिराने के संकल्प से बाण छोड़ता है।
3. “स इदस्तेव प्रतिधाव दशिष्यन्धिशीत तेजो यसोन धारम्” (ऋ.6-3-5) धार और चमक से युक्त बाण को वह धनुर्धारी सामने वाले को गिराने की दृष्टि से धनु में लगाया है।

कृशानु कहते हैं अग्नि को। कामुकी और कामुक के बीच में बाण का प्रयोग करने पर उत्पन्न होने वाले ताप का मन्मथाग्नि नाम है। कृशानु शब्द का धनुर्धारी भी अर्थ है। धन्वि मीनकेतन है। इसकी व्याख्या पहले प्रस्तुत कर दी गयी है। वह मकरध्वज भी है।

अजराशि-मकरराशि

अज और मकर से सम्बन्धित चर्चा पूर्व में विहित है। कालक्रम में अज ने ही मकर राशि का रूप धारण किया। खगोलनाटक में अज का भी एकाधिक पात्र है। मन्मथ (कामदेव) के ध्वज के रूप में, कुम्भाधिपति वरुण

के वाहन के रूप में, गजेन्द्रमोक्ष के मकर के रूप में। इन तीनों में से दोनों का विवरण प्रदत्त है।

1. अजाश्वश्रवस्यताम जाश्वमी – ऋ.1-138-4
2. रयोधारास्याघृणो वसो राशिरजाश्व – ऋ. 6-55-3
3. पूषणान्व जाश्वमुपस्तो षामवाजिनम् - ऋ. 6-55-4
4. अवितानो अजाश्व पूषायामनियामनि - ऋ. 9-67-10
5. तेरथस्य पूषन्नजधुरं ववृत्युः - ऋ. 10-26-8

कुम्भराशि

लगभग 1500 वर्ष पूर्व आचार्य वराहमिहिर के द्वारा विरचित बृहज्जातक ग्रन्थ में इस राशि को घटी कहा गया है। उसकी जीवशर्मा ने व्याख्या में “रिक्तकुम्भस्कन्धधारी”, “स्कन्धे तु रिक्तः पुरुषस्य कम्भो” अर्थ लिखा है। इसका अर्थ जलरहित घड़े को धारण किया हुआ पुरुष। यह अर्थ नितान्त अशुद्ध है।

खगोल को सूक्ष्म रूप से परिशीलन करने पर ताराओं के समूह से उत्पन्न कुम्भराशि का यह रूप दर्शन नहीं देता है। पाश्चात्य ग्रन्थों में भी कुम्भराशि के लिये पानी डालने वाले का ही रूप दिया गया है। ऋग्वेद में वरुणदेव के द्वारा जलपूरित कुम्भ को झुकाकर जलप्रदान करने वाले रूप का ही वर्णन है। शतभिषा नक्षत्र कुम्भराशि में है। इस नक्षत्र का स्वामी वरुण है।

“ नीचीनबारं वरुणः कवन्धः। प्रससर्ज रोदसी अन्तरिक्षं। तेन विश्वस्य भुवनस्य राजायवं न वृष्टिर्युनत्तिभूम”

पेद्यघाश्व

यह कोई राशि नहीं है। एक तारामण्डल है। वैदिक ऋषियों की ज्योतिर्विज्ञानपराकाष्ठा का यह एक उदाहरण है। कुम्भ और मीन राशि के बीच में उज्ज्वल प्रकाश से युक्त नक्षत्र स्वरूप एक दिव्याश्व के रूप में दर्शन देता है। पेदु नामक राजा अश्विनी देवताओं की आराधना करता है तथा फलस्वरूप अश्विनी उसे इस अश्व को भेंट करते हैं। यह श्वेताश्व है (ऋ.1-116-6)। अहिह्न है (ऋ.1-117-9)। इस अश्व को गिद्ध के पंखों के समान पंख तथा हिरण के पैर सदृश पैर हैं। “शेनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू” (ऋ. 1-163-1)।

इस अश्व को अहिह्न कहने में ज्योतिषीय विशेषता है। आश्रेषा का देवता सर्प है। आश्लेषा के तारायें दूर तक फैलकर खगोल में महासर्पाकार में दर्शन देते हैं। इसे पश्चिमी विद्वान हैड्रा तारासमूह कहते हैं। इस सर्प ने स्वाति तक फैलकर अजगर का रूप लेकर भीमसेन को पकड़ा था। यह वर्णन महाभारत के नहुष कथा में प्राप्त होता है। जब पेद्यघाश्व उदित होता है तो उसके सामने का सर्प अस्त होता है। इसीलिये इस अश्व का नाम अहिह्न भी है। अहि का सर्प तथा ह्न का मारन अर्थ है। यही वैदिक पेद्यघाश्व अनन्तर काल में मित्र की गाथाओं में पेगसस् नाम से प्रतिष्ठित हुआ। पेद्यघाश्व शब्द का विकृत रूप ही पेगसस् है। इस अश्व पर आरूढ

होकर बेह्लेरिफोन नामक योद्धा ने क्रूर सर्प तथा तीन शिर वाले पिशाच का वध किया है ऐसी मिस्र गाथायें प्रचलित हैं।

यज्ञादि क्रतुओं में दिये जाने वाले हविर्भाग खगोलीय नक्षत्रों के गमनवैशिष्ट्यों के आधार पर प्रकल्पित हैं। “ एषच्छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो” (ऋ.1-163-3)। क्रतुकर्म में तथा अन्यत्रापि भूगोल के ऊपर के समस्त नाटक खगोलीय नाटक के अनुसरण में ही चलते हैं।

मीनराशि

कन्या राशि के प्रस्ताव के समय में मीन राशि का भी वर्णन सहेतुक प्रस्तुत किया गया है।

(महाभारत में वर्णित विषयों को खगोल दृश्यों के साथ तारतम्य दिखाने वाली अन्य ग्रन्थ रचना करने की मनसा आचार्य ग्रन्थ में प्रगट करते है। किन्तु उस प्रकार की किसी ग्रन्थ की रचना हुई या नहीं इसकी जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी।)



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Creator of
hinduism
server!



COLLECTION OF VARIOUS
-> HINDUISM SCRIPTURES
-> HINDU COMICS
-> AYURVEDA
-> MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Creator of
hinduism
server!

उपसंहार

ग्रन्थ में आचार्य के द्वारा प्रस्तुत विषय निस्सन्देह विलक्षण है। वर्तमान ग्रन्थ में आचार्य के द्वारा लिखित कुछ अंशों पर ही विमर्श प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि आचार्य के द्वारा प्रस्तुत विषयों में कुछ ही अंश लिये गये तथापि विषय की दृष्टि से देखने पर व्यापकता में कोई कमी नहीं है।

वैदिक साहित्य से सम्बन्धित नयी अवधारणायें तथा दृष्टिकोणों को प्राप्त करने केलिये यह विचार अत्यन्त उपयोगी है। इनका प्रयोग आधुनिक शोध में किये जाने पर अवश्य ही नूतन विषयों का अनावरण हो सकता है।

मुख्यरूप से आचार्य के मन्तव्य वैदिक वाङ्मय में शोध का नूतन शक प्रारम्भ कर सकता है। इन विचारों का प्रयोग समीक्षात्मक तथा प्रयोगात्मक विधियों में अत्यन्त सरल रूप में किया जा सकता है।

